लिखन बैठि जाकी छवि

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (01581) 226080,244671
ई-मेल : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

संस्करण : 2021

मूल्य : 00/- (..... रुपये मात्र) ₹.....

मुद्रक : .....

LIKHAN BETHI JANKHI CHAVI
by Sadhvipramukha Kanakprabha

शुभाशंसा

साहित्य ज्ञान का संवाहक होता है। किसी भी संस्कृति को परम्परित बनाए रखने में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। अपेक्षा इस बात की रहती है कि साहित्य प्राणवान हो। वह केवल शब्दों का समूह ही नहीं, वह अपने ठीक निशाने पर वेध करने वाला भी होना चाहिए। वह पाठक के लिए सुबोध और सुग्राह्य भी होना चाहिए। कोई-कोई साहित्य दुर्बोध भी हो सकता है, जिससे पाठक के मस्तिष्क की एक्सरसाइज हो सके और जो कुछ गंभीर अध्येताओं की दृष्टि से ही निर्मित किया गया हो।

हमारे धर्मसंघ जैन श्वेताम्बर तेरापंथ में साहित्य की सुर-सरिता भी अपनी गति से प्रवहमान है। परमपूज्य आचार्य भिक्षु, परमपूज्य श्रीमद् जयाचार्य, परमपूज्य गुरुदेव आचार्य तुलसी और परमपूज्य आचार्य महाप्रज्ञ आदि के साहित्य को हमारे धर्मसंघ के परिप्रेक्ष्य में महिमामण्डित साहित्य के रूप में देखा जा सकता है।

महाश्रमणी संघमहानिदेशिका असाधारण साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने भी हमारे धर्मसंघ की साहित्य-सम्पदा को संवर्धित करने में अपना विशिष्ट योगदान प्रदान किया है। साध्वीप्रमुखाजी हिन्दी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं की विदुषी है। भाषायी ज्ञान के साथ-साथ उनकी काव्य प्रतिभा भी श्लाघनीय है। साहित्य-सम्पादन में उन्होंने कौशल प्राप्त किया है ऐसा प्रतीत होता है। परमपूज्य गुरुदेव तुलसी के साहित्य को प्रकाशनार्ह बनाने में उन्होंने अपनी प्रतिभा का भी भरपूर उपयोग किया। तेरापंथ द्विशताब्दी के अवसर पर दीक्षित हुई साध्वीप्रमुखाजी की साहित्यिक प्रतिभा ने सम्पादन की सीमा पारकर लेखन-सिन्धु में भी अवगाहन किया है। उनकी स्वयं की लिखित पुस्तकें भी हमारे धर्मसंघ के साहित्य-सन्दोह का एक सुन्दर हिस्सा है।

साध्वी-समुदाय आदि के प्रबन्धन-प्रशासन कार्य में पिछले करीब पचास वर्षों से अपनी सेवा अर्पण करने वाली साध्वीप्रमुखाजी का साध्वीप्रमुखा काल का पचासवां वर्ष चल रहा है। इस उपलक्ष्य में मेरे इंगित के अनुसार उनके साहित्य को नए रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। जीवन के नौवें दशक में यात्रायित साध्वीप्रमुखाजी लम्बे काल तक अन्यान्य सेवाओं के साथ साहित्य-जगत की भी सेवा करती रहें। साध्वीप्रमुखा कार्यकाल के अमृत-महोत्सव के उपलक्ष्य में जुड़ा हुआ, नई विधा से प्रस्तुत होने वाला यह साहित्य वाङ्मय जगत की सुषमा को बढ़ाने वाला और पाठक आदि को यथायोग्य पथदर्शन देने वाला सिद्ध हो। साहित्य के नवीन रूप में प्रस्तुतीकरण से उनके अमृत महोत्सव की भी उपयोगिता सुष्ठुरूपेण और अधिक सिद्ध हो, मंगलकामना।

7 सितम्बर, 2021 **आचार्य महाश्रमण**
भीलवाड़ा

पुरोवाक्

सागर के तट पर मेला लगा था। हजारों लोग मेला देखने आए थे। परिचित-अपरिचित अनेक चेहरे थे। वे आपस में मिले। कुछ व्यक्तियों ने मेले के बारे में अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। कुछ व्यक्ति परस्पर बतियाते हुए समुद्र के किनारे पर बैठ गए। एक व्यक्ति के मन में जिज्ञासा का ज्वार उठा। उसने अपने साथियों से प्रश्न किया–'यह समुद्र कितना गहरा है?' प्रश्न सुनकर कुछ क्षणों के लिए वहां गहरी खामोशी छा गई। कई लोगों ने अपनी बुद्धि का व्यायाम किया, किंतु समुद्र की गहराई का अनुमान नहीं हो पाया। पास में ही एक नमक का पुतला खड़ा था। वह बोला–'आप लोग कुछ समय ठहरो। मैं अभी पता लगाकर आता हूं कि सागर की गहराई कितनी है।'

पुतला सागर में उतरा। वह नीचे तल तक गया, पर लौटकर नहीं आया। दिन बीता। रात बीती। दूसरा दिन बीत गया। दूसरी रात भी बीत गई। मेला उठने लगा। दुकानदार अपनी-अपनी दुकानें समेटकर जाने लगे। मेला देखने के लिए आए हुए लोग भी लौटने लगे। तट पर बैठे जो लोग पुतले के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे थक चुके थे। पुतला नहीं आया। आता भी कैसे? सागर की गहराई मापने में उसने अपने अस्तित्व को विलीन कर दिया। वह वहीं खो गया। कोई अपने वजूद को बचाकर रख भी ले तो क्या सागर की गहराई को मापना संभव है?

एक इतिहासपुरुष

आचार्य तुलसी भारत के महान संत थे। उनके व्यक्तित्व में जितनी गहराई थी, उतनी ही ऊंचाई भी थी। उनकी गहराई को मापना संभव नहीं

है तो उनकी ऊंचाई का अंदाज लगाना भी असंभव है। उनके कर्तृत्व की गाथाएं जन-जन के मुख पर हैं। उन्होंने यौवन की दहलीज पर कदम रखते ही एक विशाल धर्मसंघ का दायित्व संभाल लिया। बीस-बाईस वर्ष की अवस्था वाले सृजनचेता व्यक्ति की आंखों में नए सपने होते हैं, उसके अन्तःकरण में नए संकल्प होते हैं और परिपार्श्व में इतनी ऊर्जा होती है, जिससे नया इतिहास रचा जाता है।

आचार्य तुलसी इतिहासपुरुष थे। उन्होंने अपने जीवन में जितने इतिहास रचे हैं, सैकड़ों-हजारों व्यक्ति मिलकर भी नहीं रच सकते। उनके मन में न तो नवीनता का व्यामोह था और न प्राचीनता का आग्रह था। कभी-कभी उनके सपनों को वायवीय कल्पनाओं के रूप में देखा जाता था, पर जब वे सपने आकार ले लेते और उनके नतीजे संघ, समाज एवं राष्ट्र के लिए हितावह प्रमाणित होते तो उनकी दूरदर्शिता की दाद भी दी जाती थी। उनकी आत्मकथा और जीवनवृत्तों का अध्ययन करते समय ऐसे अनगिन घटना-प्रसंग उभरकर सामने आ जाते हैं।

अप्रतिम व्यक्तित्व के धनी

आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कुछ ऐसे तत्त्व थे, जिन्हें देखते ही असीम आश्वास और विपुल विश्वास जागता था। वे मानव मन के कुशल शिल्पी और चेतना के निपुण वास्तुकार थे। उनके नयनों में करुणा का दरिया लहराता था और मस्तिष्क में ज्ञान का निधान भरा था। आठ दशकों में फैला उनके जीवन का हर लम्हा एक रोचक कहानी का सूत्रधार है। उन्होंने एक विशेष कालखंड (सन् 1914-1997) की यात्रा की, पर वह अतीत और अनागत के प्रभाव से मुक्त नहीं थी। उनका फौलादी संकल्प समय के प्रवाह के साथ बहने के स्थान पर उसका रुख मोड़ने की क्षमता रखने वाला था। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व एक विशिष्ट आभावलय का निर्माण करता हुआ लाखों-लाखों दर्शकों की आंखों के आकर्षण का केंद्रबिंदु बन चुका था।

आचार्यश्री जब प्रवचन करते थे तो उनकी मुद्राओं और शब्दों के बीच अद्भुत सामंजस्य स्थापित रहता था। उनके प्रवचन की विषयवस्तु समग्र शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होती रहती थी। प्रवचन के बीच में उनके

संगीत की तरंगें संपूर्ण सभामंडप को अनुगूंजित कर देती थीं। उनके गीतों के बोल केवल कानों को ही नहीं छूते, मन की तहों को चीरकर चेतना को भी झंकृत कर देते थे। उनके वक्तृत्व और संगान के सम्मिश्रण से कोई नई प्रजाति समुद्भूत होकर श्रोताओं को अभिभूत कर देती थी। हजारों-हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने वाली उनकी वाणी वातावरण में लंबे समय तक रस घोलती रहती थी।

अपेक्षा विशेष अनुसंधान की

आचार्यश्री तुलसी की कहानी इतनी दिलचस्प है कि उसे पढ़ते-पढ़ते रस बढ़ता जाता है। व्यक्ति-निर्माण और समाज-निर्माण उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। इस लक्ष्य की संपूर्ति के लिए उन्होंने क्या उपाय खोजे? क्या प्रयोग किए? कौन-से उपक्रम काम में लिए और किस सीमा तक सफलता प्राप्त की? यह सब अनुसंधान का विषय है। वैज्ञानिक लोग अपनी प्रयोगशालाओं में अनुसंधान करते हैं। महापुरुषों के जीवन पर अनुसंधान करने के लिए उनके विचार-शरीर की यात्रा करनी होगी, कार्य-प्रणाली की यात्रा करनी होगी और उनके द्वारा किए गए कार्यों की समीक्षा करनी होगी। कुछ शोध छात्रों ने आचार्यश्री के समाजदर्शन, अहिंसादर्शन, उनकी नेतृत्वशैली आदि बिंदुओं को विषय बनाकर अध्ययन किया और शोधप्रबंध प्रस्तुत भी किए, किंतु उनको पढ़ने से प्रतीत होता है कि ज्ञात की तुलना में अज्ञात बहुत अधिक है। अपेक्षा इस बात की है कि उस अज्ञात को ज्ञात करने के लिए विशेष अनुसंधान किया जाए।

अपनी बात

'अकथ कथा गुरुदेव की' आचार्यश्री तुलसी के सहज स्फुरित व्यक्तित्व एवं लोकहितकारी कर्तृत्व की प्राथमिक जानकारी मात्र देने वाली पुस्तक है। यह न तो योजनाबद्ध रूप में लिखी गई कोई महत्त्वपूर्ण कृति है और न इसमें सिलसिलेवार चयनित विषयों की व्यवस्थित प्रस्तुति है। सामयिक अपेक्षाओं के आधार पर जब कभी जो कुछ लिखा गया, वह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा। साध्वी कल्पलताजी और साध्वी शुभप्रभाजी ने इधर-उधर विकीर्ण सामग्री का संकलन कर एक पुस्तक

का आकार दे दिया। यही कारण है कि प्रस्तुत पुस्तक के कई आलेखों में कतिपय बिंदु प्रत्यावर्तित हैं, पर इसका हर आलेख स्वतंत्र है। यदि किसी भी आलेख से पुनरावर्तित अंश निकाल दिया जाए तो वह अधूरा-सा प्रतीत होने लगता है। इस दृष्टि से प्रत्येक आलेख को उसी के परिप्रेक्ष्य में पढ़ने का लक्ष्य रखा जाए।

साध्वीद्वय ने अपनी संकलित सामग्री मेरे सामने प्रस्तुत की तो मैंने अनुभव किया कि बून्द-बून्द से घड़ा इसी प्रकार भरता है। पुस्तक की अधिकांश सामग्री गुरुदेव की साक्षी से ही लिखी गई तथा स्वयं गुरुदेव द्वारा विहंगावलोकित की हुई है। इसमें अर्थवाद से बचकर यथार्थवाद की अभिव्यक्ति देने का लक्ष्य रखा गया है, फिर भी तर्क के चौखटे की तुलना में आस्था का आकाश निश्चित रूप से विशद होता है। इस दृष्टि से क्वचित किंचित भी अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति हुई हो तो मिच्छा मि दुक्कड़ं।

कलम मेरी हॉबी है, साधना है, अपेक्षा है या विवशता है, मैं नहीं जानती। जिनकी प्रेरणा से कलम हाथ में ली, वह प्रेरणा आज भी जीवंत है। जब कभी कलम रुकती है, आचार्यश्री तुलसी की प्रेरक छवि आंखों में उतरती है और अवरोध दूर हो जाता है। मेरी साहित्यिक यात्रा के प्रारंभ से ही आचार्यश्री महाप्रज्ञ का दिशाबोध मुझे कदम-कदम पर अपनी रचना में संस्कार/परिष्कार का पथ दिखाता रहा है। युवाचार्यश्री महाश्रमण द्वारा समय-समय पर व्यक्त की गई प्रसन्नता से भी मुझे शक्ति का अहसास होता रहता है। जिस त्रयी के मंगल मार्गदर्शन में मेरी संयमयात्रा निर्बाध गति से आगे बढ़ रही है, वही त्रयी मेरी कलम की साधना को भी जब तक संपोषण देती रहेगी, तब तक मैं सार्थक और सोद्देश्य पुरुषार्थ करती रहूंगी।

जयपुर
21 सितम्बर 2008

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

अनुक्रम

	शुभाशंसा	3
	पुरोवाक्	5
1.	एक क्रांतिकारी कदम	11
2.	अस्पृश्यता : संविधान में या मन में?	16
3.	व्यक्तित्व एक : आयाम अनेक	22
4.	कुछ अनछुए प्रसंग	27
5.	घोष : जो अमर हो गए	37
6.	सम्मान राष्ट्र के सजग प्रहरी का	47
7.	संसदीय गतिरोध की समाप्ति	56
8.	शांति और समझौते का सार्थक प्रयास	61
9.	दो ध्रुवों का मिलन	71
10.	मानवीय समस्याओं पर सीधा संवाद	82
11.	अध्यात्म किसी की बपौती नहीं	94
12.	संघ व समाज से अपेक्षाएं	100
13.	आलोकधर्मिता का प्रभाव	105
14.	धर्मसंघ की दीर्घजीविता का उपाय	108
15.	अतीत का आईना	112

16. मन के अंधेरों को उजालने वाला महासूर्य 129
17. एक शताब्दीपुरुष 137
18. अभिवंदना युगपुरुष की 141
19. उपमातीत व्यक्तित्व 151
20. एक असाधारण आचार्य 157

परिशिष्ट

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा : जीवन-परिचय 166
साध्वीप्रमुखाजी द्वारा सम्पादित साहित्य 170
साध्वीप्रमुखाजी द्वारा आलेखित साहित्य 174

1. एक क्रांतिकारी कदम

स्वाभिमान व्यक्तित्व का एक असाधारण गुण है। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी अपने स्वाभिमान को खंडित करने वाला कोई काम करना नहीं चाहते। कोई जंगली पशु किसी जानवर को मारकर भाग जाए और कोई भूखा सिंह उधर से गुजरे, वह उस मृत जानवर को खाना पसंद नहीं करता। क्योंकि इससे उसका स्वाभिमान आहत होता है। ऐसी स्थिति में कोई भी मनुष्य अपने स्वाभिमान को गिरवी रखकर जीवन-यापन करे, यह बात समझ में आने जैसी नहीं है। फिर भी ऐसा होता है। हमारे देश में लाखों-करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो अभावों की पीड़ा झेलने में अक्षम होकर अपने मन के साथ समझौता कर लेते हैं। स्वाभिमान के साथ सिर उठाकर जीने की उनकी इच्छा दब जाती है और वे हीनभावना से प्रताड़ित होकर दीन-हीन जिंदगी जीने के लिए विवश हो जाते हैं।

अनुसूचित जनजातियों के साथ किसी समय ऐसा ही होता था। उन्हें तथाकथित उच्च घरानों की दया के आधार पर ही अपनी जिंदगी बसर करनी होती थी। वे बड़े कहलाने वाले लोग उनसे गंदगी उठवाने का काम लेते और उन्हें उपहारस्वरूप जूठी पत्तलें देते। किसी बड़े भोज में लोगों के भोजन कर लेने के बाद उनकी थालियों या पत्तलों में जो कुछ बचता, उसे इकट्ठा कर उन लोगों को दे दिया जाता। उनके संस्कार भी इतने रूढ़ हो गए थे कि उस जूठन को खाते समय उनके मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। आदमी के द्वारा आदमी के शोषण का यह एक सभ्य तरीका था, जो शताब्दियों-सहस्राब्दियों से चल रहा था।

भगवान महावीर ने अपने युग में जातिवाद पर सीधा प्रहार किया था। उन्होंने कहा–**णो हीणे णो अइरित्ते**–कोई व्यक्ति हीन नहीं है और

कोई अतिरिक्त नहीं है। सब मनुष्य समान हैं। मनुष्य तो क्या, सब प्राणी समान हैं। आत्मतुला की इस अवधारणा को पुष्ट करते हुए उन्होंने कहा–'प्राणी अनेक बार उच्चगोत्र का अनुभव कर चुका है, अनेक बार नीचगोत्र का अनुभव कर चुका है। ऐसी स्थिति में वह किसी गोत्र-विशेष की स्पृहा न करे।'

भगवान महावीर ने हरिकेशबल चांडाल को अपने धर्मसंघ में दीक्षित कर जातिवाद की अतात्त्विकता को सिद्ध कर दिया। उन्होंने क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेश्य और शूद्र का संबंध जाति से न जोड़कर कर्म से जोड़ा। वर्णवादी व्यवस्था पर यह भी एक प्रहार था। इसके बावजूद समाज में ऊंच-नीच और स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना अपने अस्तित्व को बचाती रही।

इस युग में महात्मा गांधी ने हरिजनों को उठाने का संकल्प किया। इस संकल्प में निमित्त बनी अंग्रेज लोगों की दुर्नीति। वे समूची हरिजन कौम को हिन्दुओं से अलग कर हिन्दू समाज को कमजोर करना चाहते थे। गांधीजी ने इसका विरोध किया। उन्होंने हरिजनों को गले लगाया और उनमें चेतना लाने के लिए अनेक-अनेक उपक्रम किए तथा अपने एक साप्ताहिक पत्र का नाम भी 'हरिजन सेवक' रखा।

आचार्यश्री तुलसी की विचारयात्रा भगवान महावीर के सिद्धांतों की परिक्रमा करने वाली है। गांधीजी जैसे महापुरुषों का भी उनके मन पर प्रभाव है। सन् 1948 में आचार्यश्री चूरू जिले के छापर नामक कस्बे में चातुर्मास कर रहे थे। उस समय कुछ हरिजन भाई उनके दर्शन करने आए और बोले–'आचार्यजी! आज हमारे मोहल्ले में संतों को व्याख्यान करने के लिए भेजें तो हमें भी कुछ ज्ञान हो सकता है।' आचार्यवर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर मुनि सुपारसमलजी को वहां जाने का निर्देश दिया। हरिजनों के बीच में जाने का वह पहला प्रसंग था, अतः मुनिजी को बहुत अटपटा लगा। उन्होंने सोचा–'आचार्यश्री मुझ पर नाराज हैं, इसलिए ऐसा जघन्य काम मुझे सौंपा है। अब मेरी दुर्गति होनी है।' आज्ञा का पालन करना जरूरी है, ऐसा सोचकर वे गए, किंतु उनकी मानसिकता सही नहीं थी। वहां लगभग चार सौ हरिजनों के बीच उन्होंने व्याख्यान किया। लोग प्रभावित

हुए और वे उनके साथ आवास-स्थल पर आ गए। आचार्यश्री ने मुनिजी की ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा तब उन्हें अपनी समझ की भूल का अहसास हुआ। अब तो उन्हें ऐसा लगने लगा मानो वे कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण काम करके आए हैं। धर्मस्थान में हरिजनों को देख बहुत लोगों को अटपटा लगा। कुछ व्यक्तियों को मजाक सूझा। वे बोले–'देखते क्या हो? आगे जाओ और गुरुजी के चरणस्पर्श करो।' आचार्यश्री उनकी कुटिल मुस्कान से झांकते हुए व्यंग्य को समझ कर बोले–'चरण-स्पर्श में क्या कठिनाई है। हमारी दृष्टि में सब मनुष्य समान हैं।' हरिजनों को प्रोत्साहन मिला। उन्होंने आचार्यश्री के चरण-स्पर्श कर धन्यता का अनुभव किया।

इस घटना ने गांव में हलचल मचा दी। कुछ ही दिनों में यह संवाद दूर-दूर तक फैल गया। अब प्रतिक्रियाओं का बाजार गर्म हुआ। पुरानी विचारधारा के लोगों की प्रतिक्रिया थी–आचार्यजी ने हरिजनों-महाजनों को एक कर दिया, हमको भ्रष्ट कर दिया आदि। आधुनिकतावादी तरुण लोगों ने इसका उपहास किया। इधर समाज में इस बात को लेकर घृणा के भाव पैदा होने लगे। उस कठिन परिस्थिति में आचार्यश्री ने इस कौम में काम करने का संकल्प किया। उनके निर्देश से गांव-गांव में हरिजन-बस्तियों में व्याख्यान होने लगे और हरिजन लोग निकट आने लगे।

सन् 1949 में अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन हुआ। अस्पृश्यता-निवारण का उद्देश्य सामने था ही। अणुव्रत में एक नियम बना दिया गया–'मैं किसी को अस्पृश्य नहीं मानूंगा।' अणुव्रत का काम साधु-साध्वियों को करना था। उस समय तक उनके संस्कारों में भी रूढ़ता थी। उन्होंने कहा–'जो नीच हैं, उन्हें उत्तम कैसे बनाया जा सकता है? क्या गधा कभी घोड़ा बन सकता है? हम तो ओसवाल समाज में ही काम करते आए हैं, यह सब कैसे होगा? इत्यादि।' इस प्रकार की बातें सुनकर आचार्यवर अपने लक्ष्य से एक इंच भी पीछे नहीं खिसके। देवेन्द्रजी कर्णावट आदि कुछ कार्यकर्ता साथ जुड़े और धीरे-धीरे काम आगे बढ़ने लगा। इस संदर्भ में हरिजन नेता जगजीवनरामजी, सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री वियोगी हरि आदि आचार्यवर से मिले। दिल्ली, लाडनूं, कालांवाली आदि क्षेत्रों में हरिजन सम्मेलन हुए। इससे थोड़ा-थोड़ा वातावरण बदलने लगा।

लाडनूं में कुछ हरिजन बंधु आचार्यवर का प्रवचन सुनने के लिए आना चाहते थे। उन्हें स्वीकृति मिल गई। लाडनूं के कुछ भाइयों ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा–'हम अपने धर्मस्थान में अछूतों को आने नहीं देंगे, हम रास्ते में लेट जाएंगे आदि।' आचार्यवर ने उन्हें समझाते हुए कहा–'अभी धर्मस्थान में हम लोग ठहरे हुए हैं। हमारा द्वार सबके लिए खुला है। हरिजनों के आने से आपको आपत्ति हो तो आपका यहां उपस्थित रहना जरूरी नहीं है। वे लोग तो आएंगे।'

इस प्रकार अंतरंग और बहिरंग बाधाओं को पार कर आचार्यवर काम करते रहे। आचार्यश्री की यात्राओं में भी कहीं-कहीं ऐसे प्रसंगों को लेकर लोगों में असंतोष फैल जाता, किंतु वे एक ही बात कहते–'सार्वजनिक प्रवचन की घोषणा करवाकर आप किसी को यहां आने से कैसे रोक सकते हैं? यदि मुझे यहां ठहराना है, मेरा प्रवचन करवाना है तो हर कौम के आदमी को आने और सुनने की छूट रहेगी। अन्यथा मैं प्रवचन नहीं करूंगा।' आखिर लोगों को अपना रवैया बदलना पड़ता और अच्छे ढंग से कार्यक्रम चलते।

सन् 1958-59 में आचार्यश्री अपनी बिहार-बंगाल यात्रा के मध्य इलाहाबाद गए थे। वहां उन्होंने जैनमुनि की भिक्षाविधि के संबंध में जानकारी देते हुए कहा–'यदि हमें शुद्ध भिक्षा मिले तो हम एक शूद्र के घर से भी भिक्षा ले सकते हैं।' उस सभा में दिगम्बर विद्वान न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार जैन बैठे हुए थे। वे खड़े होकर आचार्यवर के निकट आए और चरण-स्पर्श कर बोले–'आज मैंने अपनी जिंदगी में पहली बार किसी जैनाचार्य को हार्दिक भाव से नमस्कार किया है। मैं मानता हूं कि जिनमें इतना साहस है, वे निश्चित ही महान आचार्य हैं।'

अनुसूचित जातियों में काम करने से पहले आचार्यश्री ने अपना लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहा–'यह कौम गरीब है, उपेक्षित है, इसे कोई उठाने वाला नहीं है। समाज में इसका शोषण हो रहा है, पर इसे न्याय दिलाने वाला कोई नहीं है। सबका अपना-अपना स्वार्थ है। इस कौम को मानवता का दर्जा जब तक नहीं मिलेगा, तब तक इसमें चेतना नहीं आ सकेगी। इसलिए इस कौम के लोगों में व्याप्त हीनभावना को समाप्त कर

उनका आत्मविश्वास जागृत करना मानवीय कर्तव्य है। इस कर्तव्य की प्रेरणा से हमें यह काम करना है।'

बहुत वर्षों पहले डॉ. अम्बेडकर ने जैन साधुओं से संपर्क कर कहा– 'हम लोग जैन बनना चाहते हैं। जैन हमारे लिए क्या करेंगे?' जैसा कि हमने सुना है, उनको कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला। इसलिए वे बौद्ध बन गए। मूल बात यह है कि उन लोगों की धार्मिक दृष्टि से कोई पहचान नहीं है। आस्था केंद्रित न होने तथा सामाजिक यातनाओं की स्थिति असह्य होने के कारण उन लोगों ने धर्मपरिवर्तन किया तो हिन्दू लोग चौंके। उनका चौंकना प्रतिक्रियात्मक था। आचार्यश्री का उद्देश्य यह है कि हमें इंसान को इंसान बनाना है और सबको इंसानियत का पाठ पढ़ाना है। किसी को जैन बनाना हमारा लक्ष्य नहीं है, किंतु कोई जैन बनना चाहे तो जाति आदि को लेकर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

अस्पृश्यता-निवारण के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए मोहनजी जैन (सरदारशहर) इसके साथ जुड़े। वे शुरू से ही हरिजनों में काम किया करते थे। उन्होंने संस्कार-निर्माण समिति गठित की और उसी दृष्टि से संस्कार-प्रदर्शनी तैयार की। स्थान-स्थान पर शिविर लगाए गए, प्रदर्शनियां लगाई गईं और जनचेतना जाग गई। सन् 1973 में मेघवालों के गांव बरदासर में अणुव्रत अधिवेशन हुआ। कुछ लोगों ने इसका विरोध भी किया, किंतु आचार्यश्री की प्रबल संकल्पशक्ति से किसी काम में अवरोध नहीं आया।

अस्पृश्यता-निवारण की इस लम्बी यात्रा में समाज के लोगों के संस्कार बदले, मानसिकता बदली और अनुसूचित जाति के प्रति घृणा के भाव समाप्त हो गए। इधर उन लोगों की भी हीनभावना और झिझक कम हुई है। वे लोग अपने संस्कारों को विकसित करते हुए आत्मविश्वास को बढ़ाएं, व्यसनमुक्त और रूढ़िमुक्त होकर चारित्रिक विशेषता को संजोएं, यह आवश्यक है। ऐसा होने से ही मनुष्य के अवमूल्यन, उपेक्षा और घृणाभाव का दौर समाप्त हो सकता है।

2. अस्पृश्यता : संविधान में या मन में?

जून का आखिरी दिन। प्रातः आठ बजे का समय। उस दिन आचार्यवर का प्रवास बुचेटी गांव में था। सड़क के पास ही निर्मित पंचायत भवन आचार्यवर का आवास-स्थल था। साध्वियों को गांव में ठहरना था। पंचायत भवन से गांव की ओर जाते समय बीच में एक बड़ा मकान देख साध्वियां वहां रुकीं। मकान में खड़े भाई-बहनों से पूछा–'यहां ठहरने के लिए स्थान है क्या?' वे लोग बोले–'महाराज! पधारिए। आपका ही मकान है, पर हम लोग हरिजन हैं।' साध्वियों ने कहा–'हरिजन हैं तो क्या हुआ, हैं तो आदमी ही। हमारे गुरु हरिजन, महाजन आदि में भेदभाव किए बिना सबको इंसानियत का रास्ता बतलाते हैं।'

यह बात सुन उस परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्य खुशी से नाच उठे। वे जल्दी-जल्दी झाड़ू लगाकर मकान की सफाई करने लगे और पूरा मकान साध्वियों को देने के लिए तैयार हो गए। उनकी प्रबल भावना देख साध्वियां वहीं ठहर गईं। पूर्व निर्धारित व्यवस्था के अनुसार साध्वियों को गढ़ में ठहरना था। जब उन्हें यह जानकारी दी गई तो वे बोलीं–'अभी तो हम यहां ठहर गई हैं। वह स्थान बाद में देख लेंगी, किंतु भाइयों के विशेष आग्रह पर उन्होंने उसी समय गढ़ का स्थान देख लिया। स्थान उपयुक्त था। रात्रि के समय वहां रहने की भावना प्रकट कर साध्वियां लौट आईं। पंचायत भवन से नजदीक स्थान की सुविधा को देखते हुए सहजता से यह सारी बात हो गई।

इधर साध्वियां लौटीं, उधर कुछ लोगों ने चर्चा शुरू की–'साध्वियों को हरिजनों के घर में ठहरने नहीं देंगे।' यात्रासंघ के कुछ भाई यह बात सुन साध्वियों के पास पहुंचे। उन्होंने जो कुछ सुना था, बता दिया। साध्वियों ने

कहा–'आप लोग छुआछूत की बात करते हैं। आचार्यवर का उपदेश क्या है?' भाई बोले–'हमें कोई आपत्ति नहीं है। गांववाले ऐसी बात कर रहे हैं।' साध्वियों ने कहा–'ठीक है, उनको समझा दिया जाएगा।'

आचार्यश्री पधारने वाले थे, इसलिए साध्वियां पंचायत भवन में जाने लगीं। पीछे से कुछ राजपूत भाई आए और बोले–'हरिजन के मकान में ठहरने से हमारे गांव की हल्की लगती है। लोग कहेंगे कि संतों को बणियों और राजपूतों ने ठहराया नहीं, इसलिए हरिजनों के यहां ठहरे हैं।' उन लोगों को समझाने की चेष्टा की गई, पर वे अपनी बात पर अड़े रहे। तब तक आचार्यवर पधार गए। आचार्यश्री के सामने कुछ बोलने की हिम्मत उनमें नहीं हुई। भवन से बाहर जाकर उन्होंने उस बात को तूल देना शुरू कर दिया। गांव के सौ-दौ सौ आदमी इकट्ठे होकर इस प्रसंग में गर्मागर्म बहस करने लगे। उन लोगों ने मीटिंग करके कुछ बातें तय कीं और धमकी देते हुए कहा–'हम आगे के गांवों में सूचना कर देंगे कि आप लोगों को ठहरने के लिए सवर्णों के मकान नहीं दिए जाएं।' यात्रासंघ के कुछ लोगों ने यह बात सुनी तो वे घबरा गए। अगर गांव में कुछ हो गया तो? इस आशंका ने उनको डांवाडोल कर दिया। वे साध्वियों के पास जाकर मकान खाली कर गढ़ में जाने का आग्रह करने लगे। साध्वियां बोलीं–'साध्वीप्रमुखाजी आचार्यवर के पास हैं, आप लोग उन्हें सूचित कर दें।' आचार्यवर के पास उस प्रसंग को चलाना इतना सरल नहीं था। वे संतों के पास गए। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के पास भी गए। सबने कहा–'आचार्यश्री को निवेदन करो।' वे लोग डरते-सहमते हुए परमाराध्य गुरुदेव के निकट पहुंचे।

इससे पहले साध्वियों ने सारी स्थिति आचार्यवर के ध्यान में ला दी और निवेदन किया–'गांववाले बावेला कर रहे हैं। आप फरमाएं तो हम गढ़ में चली जाएं।' आचार्यवर ने कहा–'गढ़ में जाना ही है, किंतु वे लोग अछूत हैं, इसलिए मकान खाली करने की बात नहीं जंचती। तुम लोग वहीं रहो, लोगों से बात मैं कर लूंगा....। जब तुम हिम्मत कर वहां रह ही गई तो अब कमजोरी क्यों करती हो?'

श्रावक लोगों ने आचार्यवर के सामने वही बात रखी तो उन्होंने पूछा– 'आखिर होने वाला क्या है? वे लोग साधु-साध्वियों को अपने मकान में ठहराएंगे नहीं, इतना ही करेंगे या और कुछ करेंगे?' 'नहीं गुरुदेव! ऐसी कोई बात नहीं है, पर वे सब बहुत नाराज हो रहे हैं।' आचार्यवर ने उनसे कहा– 'साध्वियां गढ़ में जाएंगी, पर अभी नहीं। क्योंकि हम लोग भी हरिजनों को अछूत कहकर उनसे घृणा करेंगे तो जनता को भाईचारे का पाठ कैसे पढ़ाएंगे? हम अणुव्रत आंदोलन चलाते हैं, जो मानवीय एकता की नींव पर ही खड़ा है। हम अपने मुंह से यह बात कहते हैं कि हम छुआछूत नहीं मानते और एक हरिजन के घर में ठहरने से कतराते रहे तो कथनी-करनी की एकता कैसे होगी? हम जो कुछ कहते हैं, उसकी क्रियान्विति करने के लिए साध्वियां वहीं ठहरेंगी।' एक ओर गांववालों की यह स्थिति थी, दूसरी ओर उस हरिजन परिवार के पांव धरती पर नहीं टिक रहे थे। परिवार का मुखिया मांगीराम और उसका एक लड़का दोनों जोधपुर में सर्विस करते हैं। एक लड़का गांव में खेतीबाड़ी संभालता है। परिवार में संपन्नता है। इसी कारण उन्होंने अपना पक्का घर भी बनवा लिया है। मकान काफी साफ सुथरा है। मध्याह्न के समय साध्वियों ने उस परिवार के सब लोगों को धर्मोपदेश दिया। जैनधर्म का तत्त्व समझाया। दुर्व्यसनों से होने वाली दुर्दशा का चित्रण किया। परिवार के लोग बोले–'हमें अपने जीवन में ऐसा रास्ता बताने वाले संतों का सत्संग आज ही मिला है। दूसरे लोग तो हमें अछूत मानकर हमसे घृणा करते हैं, जबकि हमारा खानपान खराब नहीं है।'

साध्वियों के समझाने से उस परिवार के सब लोगों ने शराब, मांस, तम्बाकू का और कुछ लोगों ने चाय का भी परित्याग कर दिया। आचार्यप्रवर प्रवचन कर रहे थे, उस समय वे सब लोग वहां पहुंचे। प्रवचन सुनने के बाद उन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर आचार्यश्री को अपना धर्मगुरु बना लिया। यदि साध्वियां उस मकान में नहीं ठहरतीं तो उस परिवार को प्रतिबोध कहां से मिलता?

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। गांव में चर्चा आगे बढ़ती गई। आचार्यवर का स्पष्ट निर्देश साध्वियों को मिल चुका था, इसलिए वे किसी भी चर्चा

से घबराए बिना अपना काम करती रहीं। मध्याह्न में प्रवचन के समय गांव के प्रायः सभी लोग पंचायत भवन के आगे बने पंडाल में एकत्रित थे। आचार्यवर ने यथासमय प्रवचन किया।

प्रवचन के मध्य एक राजपूत ठाकुर ने खड़े होकर कहा–'आचार्यजी! आपका उपदेश बहुत सुंदर है, पर आपकी साध्वियां हरिजन के घर में ठहरी हैं, यह ठीक नहीं हुआ। भगवान ने जिनको नीचा बना दिया, वे लोग हमारे उठाने से कैसे उठ सकेंगे?'

आचार्यश्री ने ठाकुर साहब की इस धारणा का निराकरण करते हुए कहा–'भगवान ने किसी आदमी को ऊंचा या नीचा बनाया है, यह एक भ्रांत धारणा है। भगवान न किसी को ऊंचा बनाते हैं और न किसी को नीचा। किसी के बनाने से कोई ऊंचा या नीचा बनता भी नहीं है। संसार में जितनी जातियां हैं, एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है और सुविधा की दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है। जातियां बनती-बिगड़ती रहती हैं। इनके आधार पर कोई ऊंचा या नीचा नहीं बनता। आज एक हरिजन है, कल वह ईसाई बन जाए, मुसलमान बन जाए या और कुछ बन जाए तब वह अछूत नहीं कहलाता। जब तक वह भंगी या मेहतर है, तब तक अछूत है और उसको छू लेना भ्रष्ट हो जाना है–ऐसी धारणा अमानवीय धारणा है। यह कहीं से भी आई हो, इसको समाप्त करना आवश्यक है। आज हिन्दू समाज वैसे ही कमजोर है, फिर वह अपने करोड़ों भाइयों को अछूत कहकर उन्हें खो रहा है। कैसी विडंबना है!'

आचार्यश्री बोल रहे थे और सामने बैठे राजपूत, बणिये, जाट आदि निर्विकल्प भाव से उन्हें सुन रहे थे। उनके मन का आक्रोश धीरे-धीरे धुलकर साफ हो रहा था। आचार्यश्री ने उनकी मनःस्थिति का आकलन करते हुए पूछा–'आपके बच्चे कहां पढ़ते हैं?' 'स्कूल में।' 'हरिजनों के बच्चे कहां पढ़ते हैं?' 'पढ़ते तो वे भी स्कूल में हैं?' आचार्यवर ने पूछा–'आप लोग बस, ट्रेन आदि में यात्रा करते हैं?' उन्होंने स्वीकृति दी तो आचार्यश्री ने कहा–'हरिजन लोग बस और ट्रेन में चढ़ते हैं या नहीं?' अगले प्रश्न में होटलों में भोजन करने की बात चली। ठाकुर लोग

बोले–'होटल में जाने से तो उनको कैसे रोका जा सकता है?' आखिरी प्रश्न में आचार्यश्री ने पूछा–'ग्राम पंचायतों में आप लोग हरिजनों के साथ बैठते हैं या नहीं?' 'वहां तो बैठते ही हैं।' तब फिर आपकी छुआछूत कहां रही?' इस बात पर सबकी नजरें झुक गईं। अब वे बोलें भी तो क्या? संवैधानिक दृष्टि से भी किसी व्यक्ति के बारे में यह कहना कि 'वह अछूत है' दंडनीय अपराध माना गया है। ऐसा कहने वाले व्यक्ति को तीन या छह माह की जेल काटनी पड़ती है।

आचार्यश्री ने अणुव्रत की चर्चा करते हुए आगे कहा–'हम लोग मानव धर्म का एक आंदोलन चला रहे हैं। उसमें ऐसे छोटे-छोटे व्रतों का संकलन है, जो मनुष्य को सही अर्थ में मनुष्य बनाने वाले हैं। अणुव्रत का एक नियम है–मैं किसी को अस्पृश्य नहीं मानूंगा। इसके माध्यम से हमने अपने समाज में अस्पृश्यता की भावना समाप्त कर दी है। दूसरे लोगों को भी हम यही उपदेश देते हैं। इसी दृष्टि से आज गांव में दूसरा स्थान होने पर भी साध्वियां हरिजन के मकान में रहीं और हमने उनको वहां ठहरने की इजाजत दी।'

आचार्यवर के इस बोधपाठ ने वहां उपस्थित अधिकांश लोगों की मानसिकता बदल दी। वे संतुष्ट होकर बोले–'आचार्यजी! हम इतनी बात जानते नहीं थे। आपने कृपा की। हमारा मोह भंग हुआ। अब हम इस प्रश्न को इस प्रकार नहीं उठाएंगे।' हरिजन भाई के मकान में स्थान कम होने के कारण पूर्व निर्धारित क्रम के अनुसार अपराह्न में साध्वियां गढ़ में चली गईं। उस दिन रात्रिकालीन कार्यक्रम गढ़ में साध्वियों के सान्निध्य में हुआ। गांव के सभी वर्गों के लोग वहां उपस्थित थे। दिन में घटित उस घटना का उनके मन पर कोई प्रभाव नहीं था। सबने शांत भाव से साढ़े दस बजे तक साध्वियों को सुना।

भारत के स्वतंत्र होने के बाद संविधान में छुआछूत समाप्त है, किंतु अब तक भी इसे सामाजिक सहमति नहीं मिल सकी है। इसी कारण लोकमानस में ऊंच-नीच और अस्पृश्यता की भावना काम कर रही है। यह स्थिति उतनी ही विचित्र है, जितनी एक बच्चे की थी–बच्चे को स्कूल

में बताया गया कि पृथ्वी घूमती है और घर में सिखाया गया कि सूरज घूमता है। परीक्षा में पूछा गया–'पृथ्वी घूमती है या सूरज?' बच्चे ने उत्तर लिखा–'स्कूल में पृथ्वी घूमती है और घर में सूरज।'

यह उदाहरण भारतीय जनता पर पूर्णरूप से सही घटित होता है। वह कहती है–'हमारे संविधान में अस्पृश्यता समाप्त है, पर हमारे मनों से उसको निकालना असंभव है।' जनता की इस अनुदार और संकीर्ण वृत्ति को बदलने के लिए सरकार, जनता और धर्मगुरुओं को विशेष कदम उठाने चाहिए। '**एगा मणुस्सजाई**' मनुष्य जाति एक है, भगवान महावीर की इस वाणी का व्यापक प्रसार करने की जरूरत है, जिससे मानवता का मूल्यांकन हो सके और भेदभाव की दीवारें ढह सकें।

3. व्यक्तित्व एक : आयाम अनेक

जैन विश्वभारती की सुधर्मा सभा। आठ-दस हजार श्रोताओं की उपस्थिति। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी का प्रवचन। जीवन और जगत की समस्याओं का विवेचन। समस्या-संकुल मानव की बेचैनी। बेचैनी से मुक्त होने के लिए नशे की संस्कृति का जीवन में प्रवेश। तनावभरी बोझिल जिंदगी को हल्का बनाने के लिए दूरदर्शन का आलंबन। दूरदर्शन पर प्रदर्शित फिल्मों में हत्या, डकैती, अपहरण और सेक्स के दृश्य। किशोर और युवा मन पर उनका दुष्प्रभाव। जाने-अनजाने उनका अपराध की अंधेरी गलियों में प्रवेश। एक अपराध के बाद दूसरा अपराध। इस प्रकार अपराधों का एक अंतहीन सिलसिला शुरू होता है। इसके कारण समूची मानव जाति भयाक्रांत है, संत्रस्त है। आचार्यश्री ने इन समस्याओं से निपटने के लिए संयम और समता का मूल्य प्रतिपादित किया। अणुव्रत और प्रेक्षा ध्यान को विस्तार से समझाया। प्रारंभ से ही बच्चों को सही दिशा मिले, इस दृष्टि से जीवन विज्ञान के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला।

प्रवचन संपन्न हुआ। आचार्यश्री सुधर्मा सभा से 'प्रज्ञालोक' में आए। बीच में छोटा-सा रास्ता, दोनों और सैकड़ों लोग खड़े हो गए। वे आचार्यश्री के आभामंडल से नई ऊर्जा पाने के लिए उत्सुक थे। आचार्यवर की कृपापूर्ण निगाहें टिकीं। लोगों ने धन्यता का अनुभव किया। आगे-से-आगे श्रद्धालुजनों की वंदना स्वीकार करते हुए और अपने अमृतभरे नयनों से आशीर्वाद बरसाते हुए वे भिक्षुविहार के उस कक्ष में पहुंच गए, जहां दिन और रात्रि का एक हिस्सा बीतता है। वहां भी लोग उनका अनुगमन करना चाहते थे, पर एक बार उनको रोक दिया गया। इससे कुछ लोगों को थोड़ी निराशा भी हुई।

प्रवचन के बाद लगभग दस मिनट का कायोत्सर्ग। डॉक्टरों का परामर्श है कि गहरे श्रम के बाद कुछ समय विश्राम आवश्यक है। विश्राम की मानसिकता न होने पर भी कभी-कभी स्वास्थ्य की अपेक्षा अथवा चिकित्सकों का परामर्श ध्यान में रखकर विश्राम किया जाता है। उस समय कक्ष के दोनों ओर प्रायः सौ-पचास व्यक्ति खड़े रहते हैं। वे इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि उन्हें भी एक मौका मिले और दो मिनिट के लिए गुरु का सान्निध्य उपलब्ध हो।

विश्राम का समय पूरा होते ही कुछ लोग भीतर प्रविष्ट हो गए। किसी को मार्गदर्शन लेना होता है। किसी को कुछ निवेदन करना होता है। कोई नए व्यक्तियों को साथ लेकर आता है। उन्हें आचार्यश्री से परिचित कराता है। कोई चातुर्मास की प्रार्थना करता है। कोई नई योजना लेकर आता है। आचार्यश्री सबकी बात सुनते हैं। अपनी आशुग्राही मेधा से काम की बात पकड़ते हैं और अविलंब निर्णय दे देते हैं। आचार्यश्री की निर्णायक क्षमता बेजोड़ है। निवेदन करने वाला सोचता है कि अमुक संदर्भ में निर्णय देने में समय लगेगा, किंतु ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रत्येक प्रसंग उनके ध्यान में हो और उन्होंने उस संबंध में पहले से सोच रखा हो। कुछ प्रसंग ऐसे भी होते हैं, जिन्हें टाल दिया जाता है अथवा चिंतनपूर्वक निर्णय दिया जाता है।

एक ओर गंभीर विषयों पर निर्णय देने का क्रम, दूसरी ओर नवागंतुक लोगों से बातचीत। एक ओर यूनिवर्सिटी के स्तर का चिंतन, दूसरी ओर ग्रामीण लोगों से वार्तालाप। कुछ समय के लिए आचार्यश्री समाज के वरिष्ठ लोगों के साथ गंभीर चर्चा कर रहे थे। उसी समय चार देहाती भाई आए। उन्होंने दर्शन किए। चरण छुए। आचार्यश्री ने उनका परिचय लिया और उनसे कहा–'भाई! यहां आए हो तो हमारा टैक्स भी भरना होगा।' चारों ग्रामीण एक दूसरे का मुंह देखने लगे, अपनी जेबें टटोलने लगे। आचार्यवर ने उनके असमंजस को तोड़ते हुए कहा–'हम साधु हैं। हमें नोट नहीं चाहिए। हम वोट भी नहीं मांगते। हमें किसी प्लॉट की भी जरूरत नहीं है। हम तो आपके जीवन की सबसे अधिक प्रिय खोट चाहते हैं। उसे आप दे सकें तो हमारा टैक्स चुक जाएगा।'

एक ग्रामीण ने शराब छोड़ी। दूसरे ने तम्बाकू छोड़ी। तीसरे ने जर्दा छोड़ा। चौथा बोला–'मुझे इन सबका त्याग करा दें।' आचार्यश्री ने अपना टैक्स वसूला और सामने रखे हुए पत्र देखने शुरू कर दिए। कहीं अणुव्रत सम्मेलन के लिए आचार्यवर के संदेश की मांग की गई थी। कहीं स्मारिका के लिए प्रेरक वचनों की अपेक्षा की गई। किसी पत्र में पुस्तक के लिए आशीर्वचन लिखने का अनुरोध था। और भी न जाने क्या-क्या बातें थीं। आचार्यवर उन्हें पढ़कर अघाए नहीं। तत्काल अलग-अलग स्थानों के लिए संदेश डिक्टेट कराए और पत्रिका देखने में लीन हो गए। बीच में ही एक परिवार आया। उसे समय दिया। एक-एक का परिचय। एक-एक को प्रेरणा। कुछ लोगों को संकल्पों में आबद्ध किया। कृपा के वे क्षण उस परिवार के लिए मूल्यवान धरोहर बन गए।

प्रवचन संपन्न हुए एक घंटा हो गया था। भिक्षा के लिए जाने वाले साधु भिक्षा लेकर लौटने लगे। एक नजर उनके भिक्षापात्रों पर और दूसरी नजर आने-जाने वाले लोगों पर। भगवती की जोड़ के संपादन का काम प्रायः इसी समय चलता है। इतने काम निपटाने में समय पूरा हो गया। फिर भी संपादन का काम शुरू कर दिया। भिक्षा आ गई। उस ओर ध्यान ही नहीं गया। संतों ने निवेदन किया तो सहजभाव से काम बंद कर दिया। इतने कार्यों के बीच इतनी सहजता। दर्शक के रूप में खड़े लोग अभिभूत हुए बिना नहीं रह सके। एक साथ अनेक प्रकार के काम। फिर भी न तनाव, न उतावलापन और न झुंझलाहट। बीच-बीच में किसी को रोकना, किसी को टोकना, किसी को उपालंभ देना और किसी को प्रोत्साहन देना। आचार्यश्री की कार्यप्रणाली सूचित करती है कि उनके मस्तिष्क के सारे ज्ञानप्रकोष्ठ खुले हुए हैं। कहीं कोई अवरोध नहीं है।

आचार्यश्री के सामने बैठे शैक्ष साधु-साध्वियां सीखते रहते हैं। वे थोड़े-से भी अलसाते हैं तो तत्काल उन्हें सजग कर देते हैं। उन्हें नींद आने लगती है तो खड़ा कर देते हैं। उनका उच्चारण अशुद्ध होता है तो बीच में ही उसे शुद्ध करा देते हैं। कितना बहुआयामी जीवन है और कितना बहुआयामी चिंतन है। इस संदर्भ में कभी-कभी अपने बारे में सोचती हूं तो

मेरा बौनापन प्रत्यक्ष हो जाता है। लिखने बैठ जाती हूं तो आसपास घटित होने वाले प्रसंगों से सर्वथा अनजान रह जाती हूं। आचार्यवर के पास बैठकर भी पढ़ने लग जाती हूं तो आवश्यक बात भी ध्यान से नहीं सुन पाती। कई बार आचार्यवर इस आत्मकेंद्रित होने के भाव पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं–'यहां क्या बात हो रही है, कुछ सुना या नहीं?' मेरा नकारात्मक उत्तर सुनकर आचार्यश्री करुणा की वर्षा करते हैं। मुझे उस प्रमाद का प्रायश्चित्त देकर उस ज्ञान से वंचित नहीं रखते। अपना बहुमूल्य समय लगाकर उस बात की जानकारी देते हैं अथवा पहले ही सजग कर देते हैं कि यह बात ध्यान देने जैसी है। मुझे बहुत आश्चर्य होता है कि आचार्यवर इतने काम एक साथ कैसे निपटा लेते हैं!

आचार्यवर जब कभी सृजन के 'मूड' में होते हैं, एक साथ दो काम करते हैं। यह प्रवृत्ति पद्य-रचना के समय बहुत बार देखी जा सकती है। गीत हो या आख्यान, उसमें एक-एक शब्द का विन्यास इतना कलात्मक होता है कि वह पाठक और श्रोता–सबको अपने साथ बहा लेता है। जब तक उपयुक्त शब्द नहीं मिलता है, सृजन में परिमार्जन का क्रम चलता रहता है। भोजन करते समय बाहर से भोजन होता है, भीतर रचना आकार लेती रहती है। कायोत्सर्ग के समय ऊपर से पूरी स्थिरता दिखाई देती है, पर भीतर रचना-प्रक्रिया विराम नहीं लेती। कभी-कभी तो किसी से बातचीत करते समय भी सृजन का सिलसिला नहीं रुकता। इसकी अभिव्यक्ति तब होती है, जब बातचीत पूरी होते ही कलम हाथ में लेकर भीतर हुई प्रक्रिया को कागज पर उतारने में संलग्न हो जाते हैं।

आचार्यश्री के सृजन के संबंध में एक विलक्षण बात यह है कि वे किसी गीत या पद्य की रचना अपने मस्तिष्क में कर लेते हैं, उसे कागज पर उतारे बिना ही परिषद में सुना देते हैं और समय का अंतराल होने पर भी स्मृति के आधार पर लिख लेते हैं। इस क्रम में उन्होंने चार-पांच दशक पहले कई रचनाएं की हैं। इसकी तुलना में यदि मैं स्वयं को या अपनी पीढ़ी के साधु-साध्वियों को प्रस्तुत करूं तो अनुभव होता है कि हम लोग तो पहले से लिखे गए या कंठस्थ किए गए पद्यों को बोलने में भी हिचकिचाते

हैं। कितना विशिष्ट क्षयोपशम है आचार्यप्रवर का! आज भी वे इस दृष्टि से जितना पुरुषार्थ करते हैं, क्षयोपशम बढ़ता जा रहा है और चेतना पर आए आवरण विरल होते जा रहे हैं।

प्रातः चार बजे से रात्रि के दस-ग्यारह बजे तक आचार्यप्रवर के जीवन के एक दिन को हम पूरी तरह से समझ सकें, उसके एक-एक क्षण की रचनात्मकता को यथार्थ अभिव्यक्ति दी जा सके तो उनके अनेक आयामों से हमारा सहज परिचय हो सकता है। एक ओर हम देखते हैं कि समय का सम्यक् नियोजन न हो पाने के कारण जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा यों ही बीत जाता है। दूसरी ओर ऐसे महापुरुष, जो काल के छोटे-से-छोटे भाग को भी सफल और सार्थक बनाकर नया इतिहास बनाते हैं। ऐसे महापुरुष हमारे लिए एक जीवंत प्रेरणा हैं। वे कुछ कहें या नहीं, उनके द्वारा जीया जा रहा जीवन पूरी मानव जाति को नई दिशा दे सकता है।

आचार्यवर का जीवन रचनात्मक प्रवृत्तियों की बहुलता से संकुल है। आवश्यक तो यह है कि हम उनकी रचनात्मकता के साथ सीधे जुड़े और कुछ नए आयाम खोलें। इसके लिए उनके जीवन में खुले हुए और खुलते जा रहे सब आयामों का परिचय पाएं। प्रस्तुत चर्चा में केवल एक-दो घंटे की प्रवृत्तियों तथा एक-दो अन्य आयामों का उल्लेख मात्र हो पाया है।

कार्तिक शुक्ला द्वितीया सं. 2048 (8 नवम्बर 91) को आचार्यश्री अपने जीवन के सतहत्तर वर्षों को पूरा कर अठहरत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में उनके कर्तृत्व से जो अपूर्व आयाम खुले हैं, उन्हें सहेजने एवं संवारने के उत्साह की नई दीप्ति उनकी आकृति पर कभी भी देखी जा सकती है। इस अवसर पर समूचा धर्मसंघ ही नहीं, पूरा मानव समाज उनकी प्रभावी पुण्यवत्ता तथा कार्यकारी एवं स्वस्थ दीर्घजीविता की मंगलभावना से सराबोर होकर कृतार्थता का अनुभव कर रहा है।

4. कुछ अनछुए प्रसंग

यूनान के दार्शनिक से किसी जिज्ञासु व्यक्ति ने पूछा–'इस संसार में सबसे बड़ा क्या है?' दार्शनिक बोला–'सबसे बड़ा है आकाश'। जिज्ञासु को समाधान मिला, पर एक दूसरा प्रश्न उपस्थित हो गया–'सबसे अधिक गतिशील तत्त्व क्या है?' इस प्रश्न के समाधान में दार्शनिक ने कहा–'विचार सर्वाधिक गतिशील है।' जिज्ञासु का तीसरा प्रश्न था–'इस दुनिया में सबसे सरल काम क्या है?' दार्शनिक बोला–'सबसे सरल काम है बिना मांगे राय देना।' प्रश्नों की बौछार जितनी तेजी से हो रही थी, दार्शनिक के समाधान भी उतनी ही तत्परता से मिल रहे थे। अब जिज्ञासु ने अपना आखिरी सवाल पूछा–'सबसे कठिन काम क्या है?' इस प्रश्न पर दार्शनिक एक क्षण रुका। वह सोचकर बोला–'सबसे कठिन काम है अपनी पहचान।' अपने आपको जो पहचान लेता है, वह जीवन के अर्थ को समझ सकता है और मानवीय मूल्यों को नई अवधारणा दे सकता है।

आकाश की व्यापकता, विचार की गतिशीलता, सलाह देने की सुगमता और आत्मबोध की कठिनता–सहज रूप से समझ में आने वाली बातें हैं। सामान्यतः आदमी इसी प्रवाह में बहता है। वह दूसरे लोगों को बहुत अच्छे परामर्श देता है, किंतु अपने अस्तित्व और दायित्व के बोध से अनजान रहता है। क्योंकि वह अपनी पहचान को असंभव नहीं तो इतना कठिन अवश्य मान लेता है कि आत्मबोध का प्रसंग आते ही उसका पुरुषार्थ कुंठित हो जाता है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति न तो स्वप्न को साकार कर सकता है और न युग की चुनौतियों का मुकाबला ही कर सकता है। ऐसा व्यक्ति अपने आपको पहचानने की दिशा में भी प्रस्थान नहीं कर सकता।

इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो हर जोखिम का स्वागत करने के लिए तत्पर रहते हैं। उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति उन्हें असंभव को संभव बना देने के लिए प्रेरित करती रहती है। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी ऐसे ही व्यक्तियों की पंक्ति में खड़े हैं, जो दीवार को तोड़कर रास्ता बना लेते हैं। उन्होंने कभी रुकना नहीं सीखा, हटना नहीं सीखा, मुड़ना नहीं सीखा, लौटना नहीं सीखा। उनका पुरुषार्थ उनके फौलादी व्यक्तित्व की जीवंत कहानी है। एक बिंदु ऐसा भी है, जहां पर आकर वे रुकते हैं, हटते हैं, मुड़ते हैं और लौट भी जाते हैं। वह बिंदु है आत्मबोध। जिस क्षण उन्हें यह अहसास हो जाता है कि अमुक रास्ता अस्तित्वबोध की मंजिल तक नहीं जाता, वे तत्काल रुक जाते हैं। उनका आदर्श वह आप्तपुरुष है, जिसने अपने आपको पहचाना और पाया है। दिन हो या रात, भीड़ हो या एकांत, स्वप्न हो या जागरण, वह आदर्श उनके सामने रहता है। वे एक धर्मसंघ के नेता हैं। समूची मानव जाति को दिशाबोध देना उनका संकल्प है। इस बड़े दायित्व का निर्वाह करते समय वे एक क्षण के लिए भी स्वयं को भूलते हैं, ऐसा प्रतीत नहीं होता। सार्वजनिक होते हुए भी वे नितांत वैयक्तिक हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन रहस्यों का अखूट खजाना है। इस खजाने को बढ़ाने के लिए वे निरंतर प्रयोग करते रहते हैं। प्रायोगिक जीवन उनकी निजी पसंद है। वे किस समय कौन-सा प्रयोग कर लेते हैं, उनके निकट रहने वाले भी नहीं जान पाते। प्रशासनिक और आध्यात्मिक–दोनों क्षेत्रों में उन्होंने नए प्रयोग किए हैं और नए अनुभव पाए हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से आचार्यश्री ने जो प्रयोग किए हैं, उनकी सूची बहुत लम्बी है। उन सब प्रयोगों को जानना, समझना और अभिव्यक्ति देना कठिन है। सब प्रयोगों के केंद्र में मूल उद्देश्य रहा है आत्मबोध, किंतु उसकी परिधि में कुछ अन्य लक्ष्य भी सक्रिय रहे हैं। आत्मबोध की इस यात्रा में वे कहां तक पहुंच पाए, यह तो उन्हीं के बताने की बात है। यहां कुछ प्रयोगों की झलकभर दिखाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

खाद्यसंयम का प्रयोग

आचार्यश्री तुलसी सन् 1925 में मुनि बने। मुनि जीवन के ग्यारह वर्षों में उनका प्रयोगधर्मा मन इतना परिपक्व नहीं हुआ था। इसलिए नए प्रयोग

करने की इच्छा जागृत होने पर भी कोई उल्लेखनीय प्रयोग नहीं हो सका। सन् 1936 में वे आचार्य बने। आचार्यत्व के गरिमामय दायित्व को संभालते ही उनका ध्यान इस ओर केंद्रित हुआ। उन्होंने अपने धर्मसंघ को सत्य की प्रयोगशाला बनाने का सपना देखा। सपना बहुत सुंदर था, पर काललब्धि का परिपाक हुए बिना कोई भी स्वप्न आकार नहीं ले पाता। प्रथम सात वर्षों का समय उस स्वप्नदर्शी मानस को यथार्थ का धरातल नहीं दे पाया। आचार्यश्री ने उस समय का उपयोग अध्ययन और अध्यापन में विशेष रूप से किया।

सन् 1944 से चिंतनपूर्वक प्रयोग करने का सिलसिला शुरू हुआ। उन्होंने सोचा–साधना के साथ स्वास्थ्य का गहरा अनुबंध है। स्वास्थ्य के लिए प्राकृतिक जीवन जीना जरूरी है। प्रकृति ने मनुष्य को जो अवदान दिया है, उसकी सुरक्षा का ध्यान नहीं रखा गया तो प्रकृति के कोप को झेलना पड़ेगा। प्रकृति के प्रकोप का अर्थ है अस्वास्थ्य और अस्वास्थ्य की निष्पत्ति है साधना में अवरोध। इस अवरोध को टालने के लिए खाने-पीने का संयम और सजगता जरूरी है। खाद्यसंयम के पहले प्रयोग में आचार्यश्री ने एक वर्ष के लिए कुछ ऐसी चीजें छोड़ दीं, जिनके लिए बचपन से ही मन में थोड़ा आकर्षण था। उन वस्तुओं में रामखिचड़ी और पापड़ का नाम उल्लेखनीय है। एक वर्ष के परहेज से उन वस्तुओं के प्रति जो आकर्षण था, वह समाप्त हो गया।

उक्त प्रयोग के साथ ही आचार्यश्री ने योगासन का प्रयोग शुरू कर दिया। आसन-प्रयोग के साथ खाद्यसंयम न रहे तो योगासन के अभ्यास से भी विशेष लाभ नहीं हो सकता। दीर्घकाल तक प्रयोग करने की दृष्टि से उन्होंने भोजन में सात या नौ द्रव्यों से अधिक न खाने का संकल्प स्वीकार कर लिया। यह क्रम वर्षों तक चला। अब भी चल रहा है। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने प्रतिवर्ष एक बार दस प्रत्याख्यान करना शुरू कर दिया। कई बार दस प्रत्याख्यान का क्रम सामूहिक भी चला। पिछले कुछ वर्षों से इस क्रम को बदल दिया गया है।

सन् 1950 से आचार्यश्री ने अष्टमी और चतुर्दशी को एकासन–दिन में एक बार भोजन का प्रयोग प्रारंभ किया। इधर यात्रा का प्रारंभ, उधर प्रतिमाह चार एकासन। कई साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं ने यात्राकाल

में एकासन न करने का अनुरोध किया, पर आचार्यश्री को एकासन में रस आ गया। उन्होंने अनुभव किया कि सप्ताह में एक समय भोजन न लेने से शरीरतंत्र को विश्राम मिलता है। यह बात नहीं थी कि भोजन न करने से भूख का अनुभव नहीं होता। भूख का अनुभव भी अतिरिक्त आत्मतोष देने वाला था। इसलिए क्रम चलता रहा। शुरू-शुरू में यात्रा के समय कुछ कठिनाई भी हुई। अब तो वह जीवन का सहज क्रम बन गया है।

स्वाद-विजय की दृष्टि से आचार्यश्री ने कुछ समय के लिए सब प्रकार के मिर्च-मसालों को छोड़ दिया। सामान्यतः बिना नमक-मिर्च की सब्जी रुचिकर नहीं लगती, किंतु रसना वश में होने के बाद अस्वाद में से स्वाद निकल जाता है। साधना के क्षेत्र में अनुकूल भोज्य पदार्थ की प्रशंसा और नीरस भोज्य पदार्थ की निंदा करने को दोष माना गया है। इस तथ्य को जानने पर भी अनुकूल-प्रतिकूल भोजन के प्रति राग-द्वेष होना अस्वाभाविक नहीं है। आचार्यश्री ने अपने आपको इतना साध लिया कि भोजन के संबंध में रुचिकर-अरुचिकर का प्रश्न गौण हो गया।

कुछ नए प्रयोग

धर्मसंघ का नेतृत्व संभालते ही भीड़ आचार्यश्री की नियति बन गई। दिन हो या रात, गांव हो या शहर, उनके चारों ओर परिचित-अपरिचित चेहरों की भीड़ रहती है। भीड़ से वे कभी अघाते नहीं हैं। क्योंकि वे भीड़ में भी अकेले रहते हैं। फिर भी विशेष प्रयोग की दृष्टि से उन्होंने कई बार साप्ताहिक एकांतवास किए। राजसमन्द, बीदासर, लाडनूं, जयपुर, सरदारशहर, हिसार आदि क्षेत्रों में किए गए एकांतवास व्यक्तिगत साधना और संघीय चिंतन–दोनों दृष्टियों से काफी महत्त्वपूर्ण रहे। हिसार का प्रयोग तो पूरे एक महीने का था। उसमें सत्ताईस दिनों तक प्रतिदिन कई घंटों तक जप का क्रम चला। उस समय प्रातःकालीन प्रवचन में एक घंटे का समय जनता के लिए था। शेष समय व्यक्तिगत ध्यान, चिंतन और जप के लिए समर्पित रहा।

सत्ताईस दिनों की उस अवधि में आचार्यश्री ने दोनों समय भोजन किया। भोजन में केवल सफेद पदार्थ, जैसे–दूध, केला, चावल आदि लिए।

एक सप्ताह के बाद चावल भी छोड़ दिए। केवल दूध और केला ही भोजन का आधार था। सत्ताईस दिन पूरे होते ही उन्होंने एक तेला (तीन दिन का उपवास) किया। तेले का वह अनुष्ठान सामूहिक था। पांच-सात साधु-साध्वियों को छोड़कर हिसार चातुर्मास काल में प्रवासित सभी साधु-साध्वियों ने उस सामूहिक तप अनुष्ठान में भाग लिया। उस काल में सामूहिक जप का प्रयोग भी चला।

प्रतिमाह चार एकासन का क्रम कई दशकों से चल ही रहा था। सन् 1975 में आचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर था। उस चातुर्मास में उन्होंने लगातार एक माह तक एकासन करने का प्रयोग किया। इस प्रयोगकाल में प्रवचन, अध्ययन-अध्यापन, जनसंपर्क आदि सभी काम नियमित रूप से चलते थे। उनके लिए सायंकालीन भोजन का समय और मिल गया। इसके बाद सन् 1976 के लाडनूं चातुर्मास में भी सावन महिने में निरंतर एकासन का क्रम चला।

सन् 1981 में आचार्यश्री के सान्निध्य में जयाचार्य की निर्वाण शताब्दी मनाई गई। उस अवसर पर आचार्यश्री ने प्रतिमाह दो उपवास करने का संकल्प स्वीकार किया, जो सन् 1982-1983 तक चलता रहा। उपवास को वे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सब दृष्टियों से उत्तम चिकित्सा मानते हैं। इस संकल्प की पूर्ति में वे उपवास के दिन पंद्रह-सोलह किलोमीटर तक चले और पारणे के दिन भी अपनी यात्रा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया।

मौन की साधना

आचार्यश्री तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य हैं। वे जैन या तेरापंथ धर्म के नहीं, मानवधर्म के प्रवक्ता हैं। उनके पास केवल जैन या तेरापंथी लोग ही नहीं आते, सब जातियों, वर्गों और धर्मों से संबंधित लोग आते हैं। अणुव्रत और प्रेक्षा ध्यान के माध्यम से वे लोकजीवन को नई दिशा देते हैं। यही कारण है कि आचार्यश्री कभी अकेले नहीं मिलते। लोग जिज्ञासु और उत्सुक होकर आते हैं तो उन्हें समझाना भी जरूरी हो जाता है। समझाने के लिए बोलना आवश्यक है। दिन भर बोलने से शक्ति का व्यय होता है। उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने

प्रतिदिन नियमित मौन करने का प्रयोग किया। सन् 1950 से प्रतिदिन दो घंटे मौन का क्रम चला, जो लम्बे समय तक व्यवस्थित रूप से चला। बीच-बीच में उस क्रम में थोड़ा-थोड़ा अवरोध भी आता है। मर्यादा महोत्सव आदि कुछ प्रसंगों पर काम का भार अधिक बढ़ जाता है तो मौन छोड़ना पड़ता है। फिर भी उसकी शृंखला पुनः जुड़ जाती है। मौन से ऊर्जा का संचय होता है और वाक्शक्ति विकसित होती है, यह आचार्यश्री का अपना अनुभव है।

आगम-संपादन के लिए प्रयोग

साधु-जीवन सिद्धि का नहीं, साधना का जीवन है। साधना के द्वारा सिद्धि तक पहुंचने के लक्ष्य को साधते रहना, यही साधना की सार्थकता है। आचार्यश्री ने दीक्षा स्वीकार की, उस समय उनके सामने साधना का उद्देश्य बहुत स्पष्ट नहीं था। पूज्य कालूगणी का अप्रतिम व्यक्तित्व और मां वदनां द्वारा प्राप्त संस्कार, इन दो प्रेरणाओं से वे मुनि बन गए। मुनि बनने के बाद अध्ययन और अनुभव की प्रौढ़ता से गहराई में उतरने का उत्साह जगा। धर्मसंघ का दायित्व संभालने के बाद तो उन पर यह जिम्मेदारी आ गई कि वे साधना के क्षेत्र में नए आयाम खोलें, जिससे साधु-संस्था का वर्चस्व बढ़ सके। प्रारंभिक वर्षों में आचार्यश्री सामान्य रूप से प्रयोग करते रहे और उन्हें संघ में व्यवहार्य बनाने के लिए सोचते रहे।

महाराष्ट्र के मंचर गांव में आचार्यश्री ने धर्मदूत पढ़ा। उसमें बौद्ध पिटकों के संपादन की चर्चा थी। उसे पढ़ते ही आचार्यश्री के मन की धरती पर एक नया सपना उगा—जैन आगमों का भी संपादन होना चाहिए। उन्होंने उसी समय अपने मन की बात मुनि नथमलजी (युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ) के सामने खोलकर रखी। मुनि नथमलजी ने आचार्यश्री के स्वप्न को साकार करने की भावना व्यक्त की। आचार्यश्री ने उसी वर्ष काम शुरू करने का संकल्प कर लिया। उस वर्ष का चातुर्मास उज्जैन में था। वहां उन्होंने अपने संकल्प की क्रियान्विति करते समय एक तेले का प्रयोग किया। वह प्रयोग भी इतना कार्यकारी रहा कि आगम-संपादन कार्य में नित्य नए आयाम खुलते जा रहे हैं। आचार्यश्री के वाचनाप्रमुखत्व में जितना आगम साहित्य सामने आया है, विद्वानों ने उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

साधना के विशेष प्रयोग

सन् 1955 में आचार्यश्री का चातुर्मास उज्जैन था। उस चातुर्मास में आगम-संपादन का काम शुरू हुआ। आगम साहित्य में गंभीरता से प्रवेश करने का अर्थ है नई दृष्टियों का निर्माण। आचार्यश्री को भी विशिष्ट दृष्टि मिली और 'कुशल साधना' का प्रयोग प्रस्तुत कर दिया। **कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के**–जो बंधा हुआ भी न हो और मुक्त भी न हो, वह कुशल होता है। सिद्ध मुक्त हो जाते हैं। गृहस्थ बंधे रहते हैं। ऐसी स्थिति में साधनाशील साधु ही कुशल शब्द को अर्थवान बना सकते हैं। **अलं कुसलस्स पमाएणं**–कुशल वह होता है, जो प्रमाद नहीं करता। इस प्रकार के सूत्रों का आलंबन साधक को पग-पग पर सजग रखता है। आचार्यश्री की प्रेरणा और प्रोत्साहन से साधु-साध्वियों में नई चेतना आई। एक कुशल व्यक्ति का आदर्श हर समय उनके सामने रहने लगा। इस साधनाक्रम से कई साधु-साध्वियों के जीवन को नया प्रकाश मिला।

सन् 1963 के बाद साधु-साध्वियों को विशेष रूप से प्रशिक्षित करने के लिए 'प्रणिधान कक्ष' का प्रयोग हुआ। कुछ चुने हुए साधु-साध्वियों को ध्यान-योगासन आदि का अभ्यास करवाया गया। इसके साथ ही मध्याह्न में विचार-गोष्ठियां आयोजित की गईं। उन गोष्ठियों में व्यक्तित्व-निर्माण की दृष्टि से अनेक विषयों पर चर्चा-परिचर्चाएं होती रहीं। प्रणिधान कक्ष का क्रम चल ही रहा था। उसमें सिखाए गए प्रयोगों को सलक्ष्य क्रियान्वित करने के लिए 'भावियप्पा साधना' का नया अभिक्रम चलाया गया। इस साधनाक्रम में सेवा-भावना और निर्जरा की भावना को विकसित करने का वातावरण बना। इन सब प्रयोगों ने एक ओर आचार्यश्री के जीवन को बहुआयामी बनाया तो दूसरी ओर धर्मसंघ में ध्यान, आसन, कायोत्सर्ग आदि प्रयोगों के प्रति आकर्षण बढ़ गया। इसी क्रम में आगे चलकर प्रेक्षा ध्यान साधना की नई पद्धति आविष्कृत हो गई।

भोजन के संदर्भ में

उक्त सब प्रयोगों के साथ-साथ आचार्यश्री ने सन् 1982 से एक नया प्रयोग शुरू कर दिया। उस वर्ष आचार्यश्री लाडनूं में महावीर जयन्ती

का कार्यक्रम संपन्न कर राणावास चातुर्मास के लिए जा रहे थे। रास्ते में अक्षय तृतीया का आयोजन बोरावड़ में था। उस समय उन्होंने चीनी, गुड़ तथा इनसे बनी हुई सब प्रकार की वस्तुओं का उपयोग बंद कर दिया। पिछले चार साल से यह संकल्प बराबर चल रहा है। आगे कब तक चलेगा, कुछ कहना कठिन है।

सन् 1982 के राणावास चातुर्मास में आचार्यश्री ने चार महीनों तक दूध छोड़ दिया। उसके बाद बालोतरा और जोधपुर में दो माह तथा आमेट में एक माह तक इस प्रयोग का प्रत्यावर्तन होता रहा। इस प्रयोग के बाद आचार्यश्री ने अनुभव किया कि कई महीनों तक दूध छोड़ने के बाद भी स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। आमेट चातुर्मास के आखिरी महीने में आचार्यश्री ने जो प्रयोग किया, वह तो और भी विचित्र था। उस प्रयोग में दूध, दही आदि सब 'विगय' से तो परहेज था ही, चुपड़ी हुई चपाती भी काम में नहीं आती थी। भोजन की मात्रा भी अत्यंत सीमित थी। प्रातःकाल थोड़ी-सी आछ (गर्म छाछ के ऊपर का पानी), मध्याह्न और सायंकाल के भोजन में एक-एक लूखी चपाती, बिना घी-तेल की सब्जी और थोड़े से चावल। इस प्रयोग को बंद करने के लिए काफी अनुरोध किया गया, पर उन्होंने इसे बहुत ही अच्छा और उपयोगी बताकर पूरे एक माह तक इस क्रम को चलाया।

सन् 1984 का मर्यादा महोत्सव बीदासर में संपन्न कर आचार्यश्री सरदारशहर पधारे। वहां चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन से उन्होंने एक विशेष अनुष्ठान शुरू किया। उस अनुष्ठान में निरंतर चार महीनों तक एक घंटा विधिवत जप का प्रयोग किया जाता। इस अवधि में भोजन के समय एक साथ एक अन्न से अधिक अन्न तथा नौ द्रव्यों से अधिक द्रव्यों का उपयोग नहीं होता। इस प्रयोग में भी आचार्यश्री को विशेष आत्मतोष मिला। इसीलिए अनुष्ठान पूरा होने के बाद भी काफी दिनों तक एक अन्नवाला संकल्प आगे चलता रहा।

संवेदना के फलक पर

सन् 1986 में आचार्यश्री के आचार्यकाल के यशस्वी पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं। पचास वर्षों के इस सफर में उन्होंने अन्य विशेष क्या प्रयोग किए,

इस संबंध में वे व्यक्ति अधिक जान सकते हैं, जो दिन-रात आचार्यश्री के अंतरंग क्षणों के साक्षी रहे हैं, पर इस बात को तो अनेक व्यक्ति जानते हैं कि जब कभी संघ के किसी भी साधु-साध्वी को प्राकृतिक या क्षेत्रीय कठिनाई का सामना करना पड़ा, आचार्यश्री ने अपने प्रयोग शुरू कर दिए। संतों को सौराष्ट्र में स्थान आदि की सुविधा नहीं मिली, उस समय आचार्यश्री ने भोजन की मात्रा बहुत सीमित कर दी। उसी शृंखला में सन् 1984 में जब पंजाब में ऑपरेशन ब्लूस्टारवाली घटना घटी और पंजाब की संचार-व्यवस्था ठप्प हो गई, आचार्यश्री ने संकल्प कर लिया कि जब तक पंजाब में प्रवासी साधु-साध्वियों के सुख-संवाद नहीं मिलेंगे, दूध नहीं पीऊंगा। उन दिनों वे लाडनूं से प्रस्थान कर जोधपुर चातुर्मास के लिए जा रहे थे। लाडनूं से नागौर तक यह संकल्प चला। नागौर से पहले यह संवाद मिल गया था कि पंजाब में साधु-सध्वियों को कोई तकलीफ नहीं है। फिर भी जब तक एक-एक वर्ग के पूरे संवाद नहीं मिले, तब तक उन्होंने दूध का उपयोग नहीं किया। पूरे धर्मसंघ के साथ तादात्म्य का यह कितना सुंदर उदाहरण है।

सामूहिक प्रयोग

सन् 1985, आमेट चातुर्मास में आचार्यश्री ने सामूहिक रूप में एक नया प्रयोग किया। उस प्रयोग में उन्होंने आमेट में प्रवासित प्रायः सब साधु-साध्वियों के साथ नौ दिवसीय प्रेक्षा ध्यान प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया। उन नौ दिनों में जनसंपर्क कम-से-कम रहा। आचार्यश्री प्रातःकालीन प्रवचन नियमित रूप से करते थे। वे प्रातः एवं सायं लोगों के बीच में बैठते, पर न तो किसी को बात करने की इजाजत थी और न ही चरणस्पर्श की। गृहस्थ तो क्या, साधु भी चरणस्पर्श नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार साधु-साध्वियां परस्पर चरणस्पर्श कर वंदना नहीं कर सकते और न ही साधना के अतिरिक्त किसी प्रसंग में बैठकर बात कर सकते थे। उन दिनों साधु-साध्वियों को अपनी चर्चा में निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान देना जरूरी था–

- भावक्रिया का अभ्यास करना।

- प्रायः मौन रहना।
- भोजन में सीमित द्रव्यों का उपयोग करना।
- सामूहिक गोष्ठियों में बराबर उपस्थित रहना।
- परस्पर चरण-स्पर्श नहीं करना, गृहस्थों से भी चरण-स्पर्श नहीं करवाना।
- पत्र-पत्रिका आदि नहीं पढ़ना।
- ध्यान, कायोत्सर्ग, योगासन आदि नियमित रूप से करना।

दिन के सारे कार्यक्रम ध्यान, कायोत्सर्ग, विचारगोष्ठी आदि आचार्यश्री के सान्निध्य में सामूहिक रूप से चलते। रात्रि में साध्वियां अपने आवास-स्थल पर प्रयोग करतीं और साधुओं को आचार्यवर की सन्निधि प्राप्त होती। ध्यान का प्रशिक्षण युवाचार्यश्री देते थे। नौ दिनों में ध्यान के अनेक प्रयोग करवाए गए ताकि साधु-साध्वियां अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उनको आगे बढ़ाते रहें।

उस नौ दिवसीय प्रयोग में साधु-साध्वियों को एक नई जीवनशैली मिली, यह कहा जाए तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। कई साधु-साध्वियां, जिनको ध्यान में रस ही नहीं था, वे भी अच्छा ध्यान करने लगे। वह क्रम अपने आपमें अनूठा और आकर्षक था। परत-दर-परत जमे हुए संस्कारों को उखाड़ने के लिए बार-बार वैसे अभ्यास-शिविरों की अपेक्षा अनुभव की गई।

आचार्यश्री ने अपने व्यक्तिगत जीवन और संघीय जीवन में अध्यात्म के धरातल पर जो प्रयोग किए, उनमें से कुछ प्रयोगों को यहां उल्लिखित किया गया है। प्रशासनिक क्षेत्र में किए गए उनके प्रयोग भी अद्‌भुत हैं। एक आध्यात्मिक अनुशास्ता के प्रशासनिक प्रयोगों में भी अध्यात्म का प्रतिबिंब तो रहेगा ही, इस बात को ध्यान में रखकर विचार किया जाए तो आचार्यश्री का जीवन अपने आपमें एक प्रयोगशाला है। उनके आसपास रहने वाले भी प्रायोगिक जीवन जीना सीखें, यह अपेक्षा है।

5. घोष : जो अमर हो गए

गांधी युग से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले श्रमण संस्कृति के क्षितिज पर भगवान महावीर का उदय हुआ। बारह वर्ष की कठोर साधना के बाद उन्होंने ज्ञान का आलोक पाया। अपनी आलोक-रश्मियों का जनहित में उपयोग करने के लिए वे लोकजीवन से जुड़े। उन्होंने अपने युग की समस्याओं को देखा और उनका समाधान प्रस्तुत किया। जातिवाद, दासप्रथा, स्त्री जाति की विडंबना आदि प्रमुख सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में उन्होंने नया चिंतन दिया। कुछ लोगों ने उस चिंतन को पकड़ा और सिद्धांतहीन मूल्यों की नींव लड़खड़ाने लगी। भगवान महावीर का युग धार्मिक और सामाजिक उत्क्रांति की चेतना का युग बन गया।

संयमः खलु जीवनम्

युगपुरुष वही होता है, जो युगीन समस्याओं को समझता है, उनका समाधान खोजता है और लोकजीवन को नई दिशा देता है। भगवान महावीर की परंपरा में अनेक युगपुरुष आचार्य हो चुके हैं। आचार्यश्री तुलसी उस परंपरा के प्रचेता आचार्य हैं। एक परंपरा और धर्मसंघ की सीमाओं में रहकर भी उन्होंने विश्वमानव को सामने रखकर अपने कार्यक्रमों का निर्धारण किया। लगभग चार दशक पहले उन्होंने अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया। अणुव्रत के माध्यम से लोकजीवन को संयम के संस्कारों से संस्कारित करने के लिए दिल्ली में प्रथम अणुव्रत अधिवेशन के अवसर पर सन् 1950 में उन्होंने एक घोष दिया–**संयमः खलु जीवनम्**–संयम ही जीवन है।

समस्या चाहे परिग्रह की हो या हिंसा की, उसके मूल में काम करने वाला तत्त्व है असंयम। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को विस्तार

देकर मनुष्य की आकांक्षाएं उस पर हावी होने लगती हैं, यह असंयम की प्रेरणा का प्रतिफलित है। संग्रह, शोषण, युद्ध आदि जितनी भी समस्याएं हैं, वे असंयम की पौध पर ही फल-फूल सकती हैं। असंयम समस्या है और संयम उसका समाधान है, इस सिद्धांत को जन-जन तक पहुंचाने के लिए उन्होंने सामाजिक जीवन में संयम को प्रतिष्ठित करने का निर्देश दिया।

अमर रहेगा धर्म हमारा

धर्म की यात्रा आलोक की यात्रा है। धार्मिक होने का अर्थ है भीतर से आलोकित होना। जहां आलोक होता है, वहां आनंद का स्रोत अपने आप बहता है। अंधकार और दुःख के साथ धर्म का कोई वास्ता नहीं है। धर्म ऐसा तत्त्व है, जो अपने आश्रितों को त्राण देता है, पर कभी-कभी त्राण देने वाले को भी अत्राण बना दिया जाता है। धर्म के साथ कुछ ऐसा ही घटित हुआ।

मुसलमान कहने लगे–'इस्लाम धर्म खतरे में है।' इस नारे ने सब मुसलमानों को चौकन्ना कर दिया। हिन्दुओं ने कहा–'हिन्दु धर्म खतरे में है।' इस घोषणा ने हिन्दुओं को सतर्क किया। इस प्रकार सब धर्मों के अधिकारी अपने-अपने अनुयायियों को उकसा कर सांप्रदायिक उन्माद बढ़ाने में लगे थे। उस समय कुछ जैन युवक 'तरुण संघ' बनाकर व्यंग्य की भाषा में बोलते और लिखते–'धर्म (पंथ) खतरे में है।' वे धर्म के नाम पर तेरापंथ धर्मसंघ को खतरे में बता रहे थे। उनका चिंतन रहा होगा कि उनके विरोध से घबराकर पंथ छोड़ दिया जाएगा, किंतु आचार्यवर धर्म को पंथ और ग्रंथ की कैद से मुक्त कर उन्मुक्त नभ दे चुके थे। उनकी दृष्टि में धर्म को कभी खतरा हो भी नहीं सकता। इसलिए उन्होंने धर्म की अमरता का उद्घोष देते हुए एक पूरा गीत रच दिया। उसकी प्रथम पंक्ति है–**अमर रहेगा धर्म हमारा**। गीत की प्रतिध्वनियां सुनकर धर्म को खतरे में मानने वाले लोगों को ऐसा लगा मानो उनके कानों में शीशा उंडेला जा रहा हो, पर जो लोग धर्म के प्रति आस्थावान थे, उन्हें बहुत बड़ा बल मिला। उनके मुंह पर उस गीत की अनेक पंक्तियां गूंजने लगीं। वैसे वह पूरा गीत ही मनन करने

के योग्य है। यहां धर्म के स्वरूप को उजागर करने वाले कुछ पद्य उद्धृत किए जा रहे हैं–

व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म समाया
जाति-पांति का भेद मिटाया
निर्धन धनिक न अंतर पाया
जिसने धारा जन्म सुधारा
अमर रहेगा धर्म हमारा

आडंबर में धर्म कहां है?
स्वार्थ-सिद्धि में धर्म कहां है?
शुद्ध साधना धर्म वहां है
करते हम हर वक्त इशारा
अमर रहेगा धर्म हमारा

धर्म नाम से शोषण करते
धर्म नाम से निज घर भरते
धर्म नाम से लड़ते-भिड़ते
कैसा धर्म बना बेचारा!
अमर रहेगा धर्म हमारा॥

धर्म की ज्योति को आच्छादित करने के लिए जो राख एकत्रित की गई थी, वह उक्त घोष की आंधी से बिखर गई। यह घटना सन् 1948, छापर चातुर्मास की है। उस वातावरण में इस घोष ने इतना काम किया कि धर्म की शाश्वत सत्ता के आगे लगाया गया प्रश्नचिह्न समाप्त हो गया।

जो हमारा हो विरोध : हम उसे समझें विनोद

जो व्यक्ति लीक से हटकर चलता है, उसे समाज सहज रूप से सहन नहीं कर सकता। आचार्यश्री ने साधु जीवन की मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए सामाजिक स्तर पर काम करने का निर्णय लिया। यद्यपि उस काम का सीधा संबंध धर्म या नीति से ही था। फिर भी कुछ परंपरावादी लोगों

को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में उसका विरोध करना शुरू कर दिया। विरोध का स्वर मंद हो या तीव्र, विरोध विरोध ही होता है। साधारण व्यक्ति विरोध की संभावना मात्र से पीछे हट जाता है। उन क्षणों में तो उसका मनोबल पूरी तरह टूट जाता है, जब उस प्रवृत्ति का सीधा लाभ उस व्यक्ति को प्राप्त न होकर समाज को मिलता है। दूसरों के लिए खपना और विरोध भी झेलना–इस दोहरी धार पर चलने का साहस किसी महापुरुष में ही हो सकता है।

आचार्यश्री के जीवन में संघर्षों एवं विरोधों का एक बहुत बड़ा भाग रहा है। कोई वर्ष मुश्किल से ही बीता होगा, जिसमें उनके विरोध में यत्र-तत्र कुछ नहीं हुआ हो। कभी धर्मसंघ की अंतरंग परिषद में विरोध के स्वर मुखर हुए, कभी श्रावक समाज में हलचल हुई। कभी जैन समाज द्वारा विरोध किया गया तो कभी सनातनी लोगों द्वारा बावेला उठाया गया। कभी कुछ प्रगतिशील कहे जाने वाले लोगों ने विरोध किया तो कभी कट्टर परंपरावादी लोगों के द्वारा उसे बल मिला। कुल मिलाकर विरोध की बदली तेजस्विता और यशस्विता को ढकने की दिशा में सक्रिय रही, पर यह भी एक यथार्थ है कि बादलों की छाया कभी स्थायी नहीं होती। बादलों की तरह फैलने वाला विरोध समय पाकर छंट जाता है और हजारों तारे चमकने लगते हैं।

विरोध के कारण आचार्यश्री कभी रुके नहीं। उनकी संकल्पशक्ति इतनी प्रबल रही कि हजार कठिनाइयों में भी वे कभी संकल्प-विकल्पों से आहत नहीं हुए। उन्होंने अनेक बार कहा–'जब तक संभव होता है, मैं विरोधों और संघर्षों से बचता रहता हूं, किंतु जब वे सामने आ जाते हैं, तब मुझे अज्ञात शक्ति मिलती है और मैं उन्हें पूरी शक्ति से प्रतिहत करने का प्रयत्न करता हूं।' आचार्यश्री के व्यक्तित्व में इस विशेषता को कभी भी देखा जा सकता है।

सन् 1949 में आचार्यश्री का चातुर्मास जयुपर था। वहां दीक्षा के प्रसंग में विरोध का वातावरण इतना तीव्र था कि बहुत लोग घबरा गए। उन नाजुक क्षणों में उन्होंने एक घोष दिया–**जो हमारा हो विरोध : हम उसे**

समझें विनोद। इस घोष से संबंधित एक पूरा गीत बनाकर उन्होंने उसका संगान किया तो सबके मनों में सोया हुआ सिंह जाग उठा। समाज के पुरुष तो क्या, महिलाओं ने सामूहिक रूप से राजस्थान की राजधानी में अहिंसक प्रतिरोध करने के लिए जुलूस निकाले। लोग देखते रह गए। बिना किसी दुर्घटना के शांत वातावरण में दीक्षा समारोह का आयोजन हो गया। तब से यह घोष निरंतर एक सफल पथदर्शक का काम कर रहा है।

विवेक ही धर्म है

धर्म जीवन का तत्त्व है। यह आत्मशुद्धि या पवित्रता का एकमात्र साधन है, किंतु इसे भी जब क्रियाकांडों के साथ जोड़ दिया जाता है और उन्हीं को प्रधानता प्राप्त हो जाती है, वहां धर्म का तेज धुंधला हो जाता है। इस कथन का अर्थ यह भी नहीं है कि धर्म में उपासना नाम का तत्त्व होना ही नहीं चाहिए। उपासना का भी एक सीमा तक मूल्य है, पर उसके साथ आचरण जीवंत रहे, यह आवश्यक है।

उपासना के दो रूप हैं–रूढ़ और प्रायोगिक। रूढ़ उपासना दिनचर्या का एक अंग अवश्य बनती है, किंतु वह जीवन को भीतर से प्रभावित नहीं कर सकती। प्रायोगिक उपासना करने से उपासना में प्राणों का संचार हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने श्रावक समाज के लिए उपासना को प्रायोगिक रूप देने का निर्देश दिया। उस निर्देश की क्रियान्विति हेतु उपासना शिविरों की आयोजना बहुत कारगर सिद्ध हुई। सन् 1963 में लाडनूं चातुर्मास में एक उपासक शिविर चल रहा था। शिविर काल में उपासक भाई-बहनों को विशेष प्रशिक्षण देते हुए एक दिन आचार्यवर ने कहा–**विवेगे धम्ममाहिए–विवेक ही धर्म है।** विवेक जागृत रहता है तो व्यक्ति किसी भी समय धर्म की आराधना कर सकता है। विवेक के अभाव में अहंकार और ममकार को पनपने का अवसर मिलता है। इसी भावना को स्पष्ट करते हुए हमारे आचार्यों ने लिखा है–

अहंकारो धियं ब्रूते नैनं सुप्तं प्रबोधय।
उदिते परमानन्दे नाहं न त्वं न वै जगत्॥

अहंकार बुद्धि से कहता है कि तू सोए हुए विवेक को जगाना मत। यदि यह जाग गया तो न मेरा अस्तित्व रहेगा, न तुम्हारा अस्तित्व रहेगा और न यह संसार चलेगा।

इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अहंकार और ममकार का वलय तोड़ने के लिए विवेक का जागरण आवश्यक है। इस दृष्टि से आचार्यश्री ने विवेक चेतना को धर्म के रूप में परिभाषित किया। प्रबुद्ध लोगों ने इस घोष को बहुत पसंद किया।

पहले इंसान इंसान : फिर हिन्दू या मुसलमान

जिस देश के मनीषी संतों ने **एकैव मानुषी जातिः** का सूत्र देकर पूरे विश्व के मनुष्यों को एकता के धागे में बांधने का प्रयत्न किया था, उसी देश में मनुष्य-मनुष्य के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी होती गई। कारण कुछ भी रहा हो, जातिवाद, भाषावाद और संप्रदायवाद का भूत इस रूप में सवार हुआ कि लम्बे संघर्ष के बाद देश का विभाजन हो गया। इस विभाजन में अहम भूमिका किसी की रही हो, पर पारस्परिक भ्रातृत्वभाव प्रगाढ़ रहता तो शायद ऐसी स्थिति नहीं आती। आज हमारे देश को स्वतंत्र हुए चार दशक पूरे होने जा रहे हैं। इस अवधि में देशवासियों को भावात्मक एकता की सीख दी गई, पर वह भी गले नहीं उतरी। फलतः आदमी-आदमी का जानी दुश्मन बन रहा है। कभी हिन्दू-मुसलमान, कभी हिन्दू-सिख एवं कभी दूसरे नाम से दंगे होते हैं और अखंड भारत को खंडों में बांटने का प्रयास होता है।

आचार्यश्री का एक स्पष्ट मंतव्य है कि हिन्दू कोई धर्म नहीं है। वह समाज है, संस्कृति है। हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी लोग हिन्दू हैं, फिर चाहे वे सिख हों, ईसाई हों, मुसलमान हों या जैन हों। यह हिन्दू शब्द की विराट परिभाषा है। इसे समझाने की कोशिश की जाती तो शायद विवाद इतना नहीं बढ़ता। भारत की माटी में भावात्मक एकता को पोषण देने के लिए उन्होंने एक घोष दिया–**पहले इंसान इंसान : फिर हिन्दू या मुसलमान।** इसमें हिन्दू एवं मुसलमान शब्द भी प्रतीकात्मक है। इसकी भावना यह है कि मनुष्य किसी भी जाति, धर्म या प्रांत से जुड़ा हुआ हो,

पहले वह इंसान है। इंसानियत का तकाजा है कि ऊपर से ओढ़े हुए भेदभावों के लबादे को उतारकर मनुष्य सबसे पहले मनुष्य बने। दक्षिण भारत की ऐतिहासिक यात्रा में मद्रास चातुर्मास के बाद सन् 1969 में आचार्यश्री ने यह घोष तब दिया, जब ईसाइयों, कम्यूनिस्टों एवं मुसलमानों के केंद्र केरल की ओर उनके चरण गतिशील थे। उस यात्रा में ही नहीं, प्रायः सभी यात्राओं में इस घोष का अकल्पित प्रभाव रहा।

कैसे बदले जीवन धारा : प्रेक्षा ध्यान साधना द्वारा

व्यक्ति बदलना चाहता है, पर पुरुषार्थ एवं प्रयोग के बिना कोई बदल नहीं सकता। मेरी शरण में आ जाओ, उसकी शरण में चले जाओ, तुम्हारा जीवन बदल जाएगा, यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। जैनदर्शन के अनुसार कोई व्यक्ति तभी बदल सकता है, जब उसका पुरुषार्थ सही हो।

देश में चरमराते हुए नैतिक मूल्यों ने आचार्यश्री को अणुव्रत का प्रवर्तन करने की प्रेरणा दी। अणुव्रत की आचार-संहिता भी पूरी सूझबूझ के साथ तैयार की गई। उसके प्रचार-प्रसार से एक वातावरण बना और वैचारिक धरती सुदृढ़ हो गई, किंतु मनुष्य के संस्कारों एवं आदतों में बदलाव नहीं हुआ। संस्कार बदले बिना व्यक्ति अच्छी बात को भी आचरणगत नहीं बना सकता। इस स्थिति का आचार्यश्री ने अनुभव किया और अपने शिष्य मुनि नथमलजी (युवाचार्य महाप्रज्ञ) को विशेष शोध एवं प्रयोग करने का निर्देश दिया। मुनि नथमलजी ने आचार्यवर के निर्देशानुसार जैन शास्त्रों में अवगाहन किया और वहां बिखरे हुए ध्यान के तत्त्वों को बटोर लिया। 'प्रेक्षा ध्यान' के नाम से उस प्राचीन ध्यान पद्धति का नवीनीकरण हुआ। सन् 1977 में जैन विश्वभारती के 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' से आचार्यश्री ने एक घोष दिया–**कैसे बदले जीवन धारा : प्रेक्षा ध्यान साधना द्वारा।**

तब से अब तक प्रेक्षा ध्यान के चालीस से अधिक शिविर आचार्यवर के सान्निध्य में आयोजित हो चुके हैं। इन शिविरों में अनेक वर्गों, अनेक विचारधाराओं और अनेक श्रेणियों के प्रायः सभी आयुमान के लोग सम्मिलित हुए। कुछ लोगों में असाधारण बदलाव आया, कुछ साधारण रूप से बदले और कुछ बदलने के रास्ते पर आ गए। प्रबुद्ध और वैज्ञानिक

दृष्टिवाले व्यक्ति इन शिविरों से विशेष रूप से लाभान्वित हुए। अब तो यह धारणा बल पकड़ती जा रही है कि किसी को बदलना है तो वह प्रेक्षा ध्यान का अभ्यास करे। शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को भी इस पद्धति से लाभ का अनुभव हुआ है।

निज पर शासन : फिर अनुशासन

अनुशासन का संबंध साधना और व्यवस्था, दोनों के साथ है। आत्मानुशासन के बिना साधना का विकास नहीं हो सकता और बाह्य अनुशासन के अभाव में व्यवस्थाओं का संचालन नहीं हो सकता। आत्मानुशासन सिद्ध होने पर बाह्य अनुशासन सहज सिद्ध हो जाता है। बाह्य अनुशासन आत्मानुशासन को जागृत या पुष्ट करने में निमित्त बन सकता है। अनुशासन में रहना जितना कठिन है, अनुशासन करना उससे भी कठिन है। अनुशासक को पग-पग पर सजग रहना होता है। उसका एक क्षण का प्रमाद अनुशासितों में अविश्वास का भाव पैदा कर सकता है।

अनुशासन करना सब चाहते हैं, अनुशासन में रहना कोई नहीं चाहता, यह वर्तमान युग की समस्या है। इसका प्रभाव राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक आदि सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। आचार्यश्री ने इस समस्या का तीव्रता से अनुभव किया। सन् 1981 में जयाचार्य निर्वाण शताब्दी का ऐतिहासिक प्रसंग सामने आया। उस अवसर पर उन्होंने एक घोष दिया–**निज पर शासन : फिर अनुशासन।**

अनुशासन तभी प्रभावी हो सकता है, जब व्यक्ति पहले स्वयं अनुशासित रहे। यह आचार्यश्री के अनुभव की वाणी थी। हर वर्ग ने इस घोष का स्वागत किया। जिन लोगों ने अपने जीवन में इसको प्रायोगिक रूप दिया, उनके सामने परिणाम भी अच्छा आया, पर उसके लिए भी धृति की अपेक्षा रहती है। आज बीज बोया जाए और आज ही फल मिल जाए, यह संभव नहीं है। धैर्य के साथ प्रतीक्षा की जाए तो निष्ठा के साथ किया जाने वाला हर प्रयोग सफल हो सकता है। कदाचित दूसरों पर उसका असर न हो तो भी प्रयोक्ता के अपने व्यक्तित्व का रूपांतरण निश्चित रूप से होता है, जो उसके जीवन की एक बड़ी उपलब्धि है।

नया सवेरा आए : सोया मन जग जाए

सन् 1985, उदयपुर जिले का आमेट नामक कस्बा। वहां आचार्यश्री की धर्मशासना के पचासवें वर्ष-प्रवेश के उपलक्ष्य में समायोजित 'अमृत महोत्सव' के बहुमुखी कार्यक्रमों के बीच आचार्यवर ने एक गीत को स्वर दिया। स्वर लहरियों से वायुमंडल गूंज उठा। जनता की चेतना झंकृत हो गई। उस गीत की प्रथम पंक्तियां हैं–

अंतर आत्मा की आवाज है, अब नया सवेरा आए,
अमृत महोत्सव की आवाज है, अब नया सवेरा आए,
नया सवेरा आए, अब सोया मन जग जाए।

इन पंक्तियों से उभरा एक प्रेरक उद्घोष–**नया सवेरा आए : सोया मन जग जाए।** इस घोष में अंतर मन को कुरेदने वाली ऐसी प्रेरणा है, जो जागृत अवस्था में सोने वाले लोगों को झकझोर देती है।

आचार्यश्री का हर बोल अनमोल है, हर चरण एक मंजिल है और हर क्रिया एक संदेश है। इसलिए पल-पल, पग-पग बहुत कुछ सीखा जा सकता है। फिर भी ऊपर जिन घोषों की चर्चा की गई है, उन सबके पीछे एक विशेष उद्देश्य है, विशेष दर्शन है और विशेष मनोभाव है। इनके द्वारा लोकचेतना में बहुत कुछ संप्रेषित किया जा सकता है। अपेक्षा है एक-एक उद्घोष की पृष्ठभूमि को समझकर उस पर गहरी अनुप्रेक्षा की जाए।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व की पूजा और अर्चा के लिए यह एक रचनात्मक उपक्रम हो सकता है। पिछले चार दशकों में लोकप्रियता की लहर पर सवार हुए घोषों की ही यहां चर्चा की गई है। वे सब घोष एक साथ यहां अंकित किए जा रहे हैं–

1. संयमः खलु जीवनम्
2. अमर रहेगा धर्म हमारा
3. जो हमारा हो विरोध : हम उसे समझें विनोद
4. विवेक ही धर्म है

5. पहले इंसान-इंसान : फिर हिन्दू या मुसलमान
6. कैसे बदले जीवनधारा : प्रेक्षा ध्यान साधना द्वारा
7. निज पर शासन : फिर अनुशासन
8. नया सवेरा आए : सोया मन जग जाए

6. सम्मान राष्ट्र के सजग प्रहरी का

11 अक्टूबर 1993, सोमवार का दिन। मध्याह्न का समय। 'इन्दिरा गांधी पुरस्कार' की घोषणा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इ) ने अपने शताब्दी वर्ष सन् 1985 में राष्ट्रीय एकीकरण के निमित्त इस पुरस्कार का आरंभ किया। यह पुरस्कार ऐसे व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को दिया जाता है, जिन्होंने राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य की पूर्ति में उल्लेखनीय योगदान किया है। इस पुरस्कार का निर्णय एक सलाहकार समिति करती है। समिति में कला, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, धर्म, सामाजिक कार्य, पत्रकारिता, विधि और सार्वजनिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले कम-से-कम सात और अधिक-से-अधिक ग्यारह व्यक्ति होते हैं। अब तक सात पुरस्कार दिए जा चुके हैं। पुरस्कार प्राप्त करने वालों में प्रथम नाम स्वामी रंगनाथानन्दजी का है और सातवां नाम परम धाम आश्रम का है। सन् 1992 को पुरस्कार हेतु अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के नाम की घोषणा की गई। इस घोषणा की सूचना सलाहकार समिति के संयोजक श्री रामेश्वर ठाकुर ने टेलीफोन द्वारा अणुव्रत भवन को दी। अणुव्रत भवन से यह संवाद पूरे देश में प्रसारित हो गया।

उन दिनों अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी राजलदेसर (चूरू) में अपना चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। देश भर से हजारों की संख्या में उनके अनुयायी सहज ही वहां आए हुए थे। पुरस्कार का संवाद राजलदेसर पहुंचा तो तेरापंथ समाज में खुशी की लहर दौड़ गई। साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं के समूह बधाई देने के लिए आचार्यश्री के उपपात में पहुंचने लगे। चेहरों पर उभर रहे उल्लास और गौरव के भावों को अपने

भीतर समेटे हुए लोगों ने अणुव्रत अनुशास्ता का अनौपचारिक वर्धापन किया। सब लोग प्रसन्न थे, पर आचार्यश्री तटस्थ बनकर बैठे थे। कुछ लोग आकाशवाणी और दूरदर्शन से इस संवाद को सुनने के लिए उतावले हो रहे थे। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा–'इतनी प्रसन्नता किस बात की है? आज नया क्या हुआ है? हमने अतीत में काम किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करने का संकल्प है। इस मूल्यांकन ने हमारे दायित्व को और अधिक बढ़ा दिया है। मैं अपने धर्मसंघ से अपेक्षा करता हूं कि वह अपने अन्यान्य कार्यक्रमों के साथ राष्ट्रीय एकता और सद्भाव की दृष्टि से भी सतत पुरुषार्थ करता रहे। हमारा पुरुषार्थ मूल्यांकन या पुरस्कार के लिए नहीं, निर्जरा के लिए हो।'

पुरस्कार की घोषणा का संवाद पाकर अणुव्रत अनुशास्ता ने प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव के नाम दिए अपने संदेश में कहा–हमें संवाद मिला है कि 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' की घोषणा हुई है। उसके लिए हमारा नाम चुना गया है। हम पुरस्कार की अपेक्षा अपने दायित्व और कर्तव्य को अधिक महत्त्व देते हैं। हमने अपनी आध्यात्मिक प्रेरणा और एकता की निष्ठा से अणुव्रत आंदोलन का प्रारंभ किया। अणुव्रत का अर्थ है– जातीय भेदभाव, सांप्रदायिक उत्तेजना और अनैतिकता के प्रति असहमति, असहयोग एवं क्रांति। इस मानवीय आचार-संहिता ने इन सब बुराइयों के प्रति राष्ट्र को सचेत किया।

बहुत लोग कहते थे–'आप इतना काम करते हैं, पर उसका मूल्यांकन नहीं हो रहा है।' हम जो कर रहे थे, वह अपनी श्रद्धा और निर्जरा की दृष्टि से कर रहे थे। हमारी दृष्टि में श्रद्धा और निर्जरा से अधिक कोई मूल्यांकन नहीं होता। इस विचार से आप भी सहमत होंगे। आपने चार दशक से चल रहे इस मूक अभियान का मूल्यांकन कर जनता को मुखर बनाया है। अब यह स्वर सुनाई दे रहा है कि हिन्दुस्तान जाग रहा है और सही निर्णय करने की हमारी शक्ति सुरक्षित है। हम इस पुरस्कार को व्यक्तिगत नहीं मानते, अध्यात्म, धर्म, श्रद्धा और निर्जरा के प्रति समर्पित पुरस्कार मानते हैं। हम आपकी पुरस्कार देने की भावना का आदर करते हैं और आपकी अंकन-क्षमता का अंकन कर रहे हैं।'

11 अक्टूबर को रेडियो और टी.वी से पुरस्कार की घोषणा का संवाद प्रसारित हुआ। 12 अक्टूबर को हिन्दी और अंग्रेजी के समाचार पत्रों में उस घोषणा का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। सलाहकार समिति की ओर से 11 अक्टूबर को प्रेषित अवार्ड पत्र उपलब्ध हो गया। इसके साथ ही देश भर से टेलीफोन, टेलीग्राम और बधाई देने के लिए आने वाले लोगों के आगमन का सिलसिला शुरू हो गया।

पुरस्कार की घोषणा सुनकर लोगों के मन में कुछ प्रश्न उठे–प्रधानमंत्री दिल्ली में हैं और आचार्यश्री राजलदेसर हैं। यह पुरस्कार कहां दिया जाएगा? कब दिया जाएगा? कैसे दिया जाएगा? क्या प्रधानमंत्री पुरस्कार देने राजलदेसर आएंगे? क्या आचार्यश्री दिल्ली जाएंगे? यदि आचार्यश्री दिल्ली जाकर पुरस्कार ग्रहण करेंगे तो इन्दिरा गांधी के शहीदी दिवस 31 अक्टूबर की बात उसके साथ कैसे जुड़ेगी? आचार्यश्री पुरस्कार में प्राप्त राशि ग्रहण करेंगे क्या? आचार्यश्री को राशि तो लेनी नहीं है, फिर क्या यह पुरस्कार अस्वीकृत कर दिया जाएगा। आदि अनेक प्रश्नों पर अनेक लोग आपस में चर्चा करते रहे। उन्हें समाधान का सूत्र नहीं मिला।

25 अक्टूबर तक यह निर्णय हो गया कि पुरस्कार 31 अक्टूबर 1993 को दिल्ली में दिया जाएगा। आचार्यश्री की ओर से उनके प्रतिनिधि यह पुरस्कार ग्रहण करेंगे और पुरस्कार में प्राप्त होने वाली राशि ग्रहण नहीं की जाएगी। इस संदर्भ में कार्यक्रम का निर्धारण करने के लिए दिल्ली से तेरापंथ समाज का प्रतिनिधि मंडल राजलदेसर पहुंचा। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री के दिशादर्शन से कार्यक्रम की पूरी रूपरेखा निर्णीत हो गई।

31 अक्टूबर 1993 का दिन। अपराह्न पांच से छह बजे का समय। प्रसिद्ध तीन मूर्ति भवन का महाकक्ष। महाकक्ष में एक ओर स्वर्गीय इन्दिरा गांधी के कुछ आदर्श वाक्य अंकित थे तो दूसरी ओर अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी के सुभाषित दर्शकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। ठीक समय पर समारोह में सम्मिलित होने वाले लोग पहुंच गए। सलाहकार समिति के संयोजक रामेश्वर ठाकुर ने प्रशस्तिपत्र का वाचन किया। प्रशस्तिपत्र में आचार्यश्री के कर्तृत्व को विस्तार के साथ उजागर किया गया है। उसका प्रारंभ निम्न निर्दिष्ट रूप में किया गया है–

इन्दिरा गांधी पुरस्कार राष्ट्रीय एकीकरण निमित्त 1992

आचार्यश्री तुलसी को समर्पित प्रशस्ति पत्र–

'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकीकरण पुरस्कार की स्थापना सब प्रकार के धार्मिक आधारों और संकुचित वर्गों से हटकर ऊंचे मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए की गई थी। इन मूल्यों की प्रतिष्ठा युगों तक अशोक और अकबर ने और आधुनिक समय में महात्मा गांधी सरीखे भारत के महान सपूतों ने की है। इन्दिराजी करुणा, सहिष्णुता और सामञ्जस्य की महान भारतीय परंपराओं की सच्ची संतति थीं। उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द बढ़ाते हुए और निर्धनों तथा उपेक्षितों की मदद करते हुए भारत की अखंडता और एकता को सुदृढ़ करने के लिए अत्यधिक योगदान किया था। उन आदर्शों और उनके लिए उनकी प्रतिबद्धता के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिए आठ वर्ष पहले एक पुरस्कार का शुभारंभ किया गया था। प्रतिवर्ष सलाहकर समिति को इन लक्ष्यों के प्रति समर्पित एक व्यक्ति अथवा संस्था को सम्मानित करने का गौरव प्राप्त हुआ है।

समिति ने इस वर्ष अणुव्रत आंदोलन के प्रणेता और महान मानवतावादी आचार्यश्री तुलसी को सम्मानित करने का निश्चय किया है। आचार्यश्री तुलसी जैन धर्म के तेरापंथ के आचार्य हैं। उनका चिंतन और दृष्टिकोण सांप्रदायिक संकीर्णता से सर्वथा मुक्त है। उनके ही शब्दों में उनका परिचय है–'मैं पहले मानव हूं, उसके बाद धार्मिक हूं, तत्पश्चात जैन हूं, तेरापंथ का आचार्य हूं।' आचार्यश्री तुलसी के इसी असांप्रदायिक और व्यापक दृष्टिकोण ने उन्हें मानवतावादी धर्माचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने धर्म को रूढ़िवाद और अनावश्यक कर्मकांड से बचाकर अध्यात्म और नैतिकताप्रधान बनाने की अपेक्षा महसूस की जो कि जाति, वर्ग और संप्रदायों की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर हो।

राष्ट्र में अहिंसा, शांति और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए आचार्यश्री तुलसी ने 9 जुलाई 1985 को संत लौंगोवाल को बातचीत करने के लिए प्रेरित करके समझौते का मार्ग प्रशस्त किया। 'राजीव-लौंगोवाल' के

ऐतिहासिक पंजाब समझौते के मूल में आचार्यश्री तुलसी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।'

प्रशस्तिपत्र बहुत लम्बा है और गरिमापूर्ण शब्दों में लिखा हुआ है। यहां उसका एक अंश ही उद्धृत किया गया है। प्रशस्तिपत्र जिनके लिए था, वे वहां उपस्थित नहीं थे। प्रधानमंत्री और कांग्रेस के अध्यक्ष श्री पी.वी. नरसिम्हाराव ने प्रशस्तिपत्र मंजूषा खोलकर उसे सभासदों के सामने प्रदर्शित किया। आचार्यश्री तुलसी के प्रतिनिधि मुनि संगीतकुमारजी ने उसे ग्रहण किया। तीन मूर्ति भवन का महाकक्ष आचार्य तुलसी के जयकारों से गूंज उठा।

प्रधानमंत्री ने अपने अभिभाषण में पुरस्कार के उद्देश्य और उसकी अर्हताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा–'हमारी संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है। आचार्य तुलसी उस श्रमण परंपरा के प्रतीक पुरुष हैं, जिसने भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर जैसी मानवतावादी विभूतियों को जन्म दिया। उन्होंने मानव जाति के कष्टों को दूर करने के लिए अपनी महान साधना से सत्य का मार्ग दिखाया। आचार्यश्री ने अपने जीवन और कार्यों के द्वारा आदमी-आदमी के बीच बढ़ती दूरियों और वैमनस्य को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास किया। उनके प्रयासों का आरंभ 11 वर्ष की उम्र में मुनि दीक्षा और 22 वर्ष की युवावस्था में उनके द्वारा आचार्य पद के ग्रहण करने से होता है। विगत चार दशकों से वे अणुव्रत आंदोलन के द्वारा देश-विदेश में जीवन-मूल्यों की स्थापना करने के लिए कठोर साधना कर रहे हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से उनके इस आंदोलन से प्रभावित रहा हूं।

महात्मा गांधी ने मनुष्य को समाज की बुनियादी इकाई मानकर उसकी शुचिता पर विशेष बल दिया था और कहा था–'यदि मनुष्य अपने को सुधार ले तो समाज और राष्ट्र का परिष्कार स्वतः ही हो जाएगा।' इसी लक्ष्य को सामने रखकर आचार्यश्री तुलसी अणुव्रत के द्वारा मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए बराबर प्रेरित करते रहे हैं। उनका कहना है–अणुव्रत चरित्र-निर्माण का आंदोलन है, जीवन-शुद्धि का आंदोलन है, संकल्पशक्ति के विकास का आंदोलन है, आत्म-दर्शन का आंदोलन है। राष्ट्र की एकता और अखंडता इसी से संपादित हो सकती है।

मैं एक बार पुनः आचार्यश्री तुलसी को सम्मानित करते हुए गौरव का अनुभव करता हूं और उन्हें अपनी मंगल कामना प्रस्तुत करता हूं कि वे इसी तरह भारतीय संस्कृति के 'प्रतीक पुरुष' के रूप में हमें दीर्घकाल तक प्रेरित करते रहें। यह पुरस्कार समर्पित कर हम आचार्य तुलसी को पुरस्कृत नहीं कर रहे हैं, अपितु इस माध्यम से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं।'

पुरस्कार समारोह में पढ़े गए स्वीकृति भाषण में आचार्यश्री तुलसी ने ईस्वी सन् 1950 में हुई दिल्ली यात्रा, अणुव्रत के प्रथम अधिवेशन, पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ प्रथम बार के मिलन और अणुव्रत के व्यापक कार्यक्रमों की चर्चा की। भाषण के अंत में आचार्यश्री ने जो उद्‌गार प्रकट किए, वे इस प्रकार हैं–

'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार समिति' ने अणुव्रत के परिपार्श्व में होने वाले बहुमुखी कार्य का अंकन किया और पुरस्कार की घोषणा की। इससे अध्यात्म और नैतिकता के क्षेत्र में काम करने वाले सभी लोगों ने उल्लास का अनुभव किया। मैंने भी उसे नैतिक और आध्यात्मिक कार्य के मूल्यांकन की दृष्टि से स्वीकार किया। इस अवसर पर स्व. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी और प्रधानमंत्री राजीव गांधी के साथ रहे मेरे गहरे आत्मीय संबंध की स्मृति उजागर हुई है। आप जानते हैं, मैं अकिंचन हूं। इसलिए पुरस्कार राशि मेरे लिए सहज ही अस्वीकार्य है। इसका उपयोग आप जैसा चाहें, वैसा ही करेंगे। मैं आपकी भावना को पूर्ण सद्‌भावना के साथ स्वीकार करता हूं। केवल मैं ही नहीं, अध्यात्म, नैतिकता और अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले सब लोग इसे स्वीकार कर रहे हैं। इसकी स्वीकृति के साथ मैं अनुभव करता हूं कि मुझ पर अधिक उत्तरदायित्व आ गया है तथा यह भी अनुभव करता हूं कि मानवीय तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में काम करने के लिए मेरा मार्ग और अधिक प्रशस्त हुआ है। आप सबकी सद्‌भावना के लिए पुनः साधुवाद।'

आचार्यश्री के स्वीकृति भाषण को पढ़ने का सौभाग्य मुनि संगीतकुमारजी को उपलब्ध हुआ। समारोह के आयोजकों ने उस अवसर पर आचार्यश्री

का जो परिचय प्रकाशित किया, वह चर्चा का विषय बना रहा। तब तक किसी भी पुरस्कार प्राप्त करने वाले का परिचय इतने विस्तार से प्रकाशित नहीं हुआ था। पुरस्कार समिति की परंपरा के अनुसार वह आयोजन 'तीन मूर्ति भवन' के महाकक्ष में हुआ। आचार्यश्री के अनुयायियों, परिचितों और प्रशंसकों की संख्या इतनी अधिक है कि वैसे दस महाकक्षों में भी वे नहीं समा पाते। उस समारोह में कार्ड द्वारा आमंत्रित व्यक्तियों को ही भीतर जाने की अनुमति मिली। शेष व्यक्ति महाकक्ष से बाहर टी.वी. की व्यवस्था से कार्यक्रम देख पाए। प्रधानमंत्री ने बाहर बरामदों में बैठे व्यक्तियों की ओर इंगित करते हुए कहा–'हमारा आयोजन हॉल छोटा रहा और अणुव्रत का परिवार बड़ा है। आपको कठिनाई हुई, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं।' श्रीमती सोनिया गांधी ने वहां से विदा होते समय कहा–'आज का कार्यक्रम बड़ा भव्य रहा। आज की उपस्थिति भी उल्लेखनीय थी।' इस कार्यक्रम के संवाद आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी प्रसारित हुए।

तेरापंथी सभा, दिल्ली के अध्यक्ष श्री जसवंतराय जैन दिल्ली के गणमान्य व्यक्तियों के साथ 'प्रशस्तिपत्र' लेकर आचार्यश्री के पास पहुंचे। राजलदेसर के प्रेक्षा समवसरण में आयोजित एक विशेष समारोह में आचार्यश्री को वह प्रशस्तिपत्र समर्पित किया गया। श्री जसवंतराय जैन और मान्य विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रीचन्दजी रामपुरिया को प्रशस्तिपत्र समर्पित करने का सौभाग्य मिला। उस अवसर पर आचार्यश्री ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा–'हमने जब से सार्वजनिक क्षेत्र में काम करना शुरू किया, हमें भीतर और बाहर से निराशा और आलोचना की बातें सुनने को मिलीं। हम सुनते रहे, पर उनमें कभी उलझे नहीं। मैं जानता था कि लोग ध्वजा को देखते हैं, नींव को देखने वाले कम होते हैं। चार दशकों के बाद हमारा काम सामने आया है। व्यापक रूप में उसका मूल्यांकन हुआ है। मूल्यांकन के क्षणों में भी मैं तटस्थ भाव से अपना निरीक्षण और परीक्षण करता हूं कि उत्कर्ष के क्षणों में भी कभी अहंभाव से न भर जाऊं। मानवता के अभ्युदय का दायित्व पहले से ही हम वहन कर रहे थे, अब वह अधिक बढ़ गया है। हम काम करते आ रहे हैं, अब भी करेंगे। लगता है कि अब हमारा रास्ता प्रशस्त हो गया है।'

आचार्यश्री को प्राप्त पुरस्कार के संवादों से तेरापंथ समाज तथा वे सभी लोग पुलकित हो उठे, जो आचार्यश्री के कर्तृत्व से परिचित रहे हैं। उस अवसर पर आने वाले बधाईपत्रों और टेलीग्रामों के ढेर लग गए। हजारों लोगों द्वारा प्रेषित उद्‌गारों में प्रखरता और व्यापकता के साथ गूंजने वाली कुछ प्रतिध्वनियां इस प्रकार हैं–

- इस योग्यतम चयन के लिए चयन समिति को हार्दिक बधाई।
- आचार्य तुलसी के कर्तृत्व की इस महनीय उपलब्धि पर जैन समाज गौरवान्वित है।
- यह उद्‌घोषणा भारतीय संस्कृति एवं ऋषि परंपरा के गौरव के अनुरूप है।
- इस चयन से राष्ट्रीय गौरव में अभिवृद्धि हुई है।
- यह उचित समय पर किए गए उचित मूल्यांकन का अमिट हस्ताक्षर है।
- आचार्य तुलसी के नाम के साथ जुड़कर यह पुरस्कार स्वयं कृतार्थ हुआ है।
- आचार्य तुलसी एक व्यक्ति नहीं, संस्कृति है। उनका सम्मान भारतीय संस्कृति का सम्मान है।
- यह सम्मान राष्ट्र के उस सजग प्रहरी का है, जो जीवनभर मानव जाति को उपकृत करता रहा है।
- आचार्य तुलसी के दीर्घकालीन मानवतावादी कार्यों को देखते हुए उन्हें यह सम्मान मिलना ही चाहिए था।
- आचार्यश्री ने राजस्थान के गौरव को आकाशी ऊंचाई दी है।
- आचार्य तुलसी एक ऐसे पारसमणि हैं, जो कई शताब्दियों बाद इस देश को मिले हैं।

आचार्य तुलसी का नाम अब राजस्थान, तेरापंथ समाज और जैन समाज तक सीमित नहीं रहा है। विश्व मंगल के लिए उनके द्वारा किए जा रहे कार्यक्रमों ने उनको विश्व संत के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। समाचार पत्रों ने भी उनके कर्तृत्व से लाखों-करोड़ों को परिचित कराया है। प्रस्तुत पुरस्कार की उद्‌घोषणा एवं समर्पण के संदर्भ में मीडिया ने जो तत्परता दिखाई, उससे पुरस्कार चयन समिति के सदस्य भी चमत्कृत हो

गए। उनकी प्रतिक्रिया थी–'इस पुरस्कार के विषय में ऐसी सुंदर, व्यवस्थित और शानदार कवरेज हम पहली बार देख रहे हैं।' देश भर के अंग्रेजी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लगभग सौ राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पत्रों ने इसके सचित्र विस्तृत संवाद प्रकाशित किए।

31 अक्टूबर को तीन मूर्ति भवन में आयोजित इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता समारोह की चर्चा केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही। बी.बी.सी. वर्ल्ड न्यूज ने 1 नवम्बर 1993 को प्रातःकाल इस समारोह की झांकी के साथ समाचारों का प्रसारण किया। वॉइज ऑफ अमेरिका (वर्ल्ड न्यूज एजेंसी) ने भी पूरी भव्यता के साथ इस संवाद को प्रसारित किया।

आचार्य तुलसी के विशिष्ट व्यक्तित्व और अपरिमेय कर्तृत्व की तुलना में 'इन्दिरा गांधी पुरस्कार' कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। इसका उल्लेखनीय पहलू यह है कि इसके माध्यम से देश-विदेश के करोड़ों लोग आचार्य तुलसी के नाम और उनके लोक कल्याणकारी अभियान से परिचित हो गए।

7. संसदीय गतिरोध की समाप्ति

ईस्वी सन् 1994, अगस्त का प्रथम सप्ताह। देश की राजधानी दिल्ली में लोकसभा और राज्यसभा के वर्षाकालीन सत्र का प्रारंभ। 5 अगस्त, सोमवार को सर्वदलीय संसदीय रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, पर प्रतिपक्षी पार्टियों द्वारा संसद में गतिरोध उपस्थित किया गया। संसदीय गतिरोध को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए, किंतु कोई किसी को सुनने के लिए तैयार नहीं हुआ। एक-एक कर पूरे सात दिन बीत गए। लोकसभा और राज्यसभा में कुछ भी काम नहीं हो रहा था। प्रतिपक्ष ने दोनों सदनों का बहिष्कार कर रखा था। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की प्रतिष्ठा दांव पर लग गई। लोकसभा के अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने गतिरोध दूर करने के लिए अनेक प्रयास किए, पर सफलता नहीं मिली। न सत्तापक्ष झुकने के लिए तैयार था और न प्रतिपक्ष। देश भर में चिंता की लहर दौड़ गई। राष्ट्रीय हितों की रक्षा से प्रतिबद्ध लोगों का एक-एक क्षण बेचैनी में बीत रहा था। किसी अशुभ की आशंका से उनकी घबराहट बढ़ती जा रही थी। भारतीय राजनीति के लिए वह समय बहुत ही कशमकश का हो गया।

उन दिनों अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी का प्रवास दिल्ली में था। वे वी.पी. सिंह सरकार के समय से ही 'राष्ट्रीय एकता समिति' के मनोनीत सदस्य रहे हैं। जब से भारत स्वतंत्र हुआ है, आचार्यश्री देश में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील हैं। अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन उन्होंने इसी उद्देश्य से किया। उनकी आकांक्षा है कि भारत अपनी गरिमा को अक्षुण्ण रखे। एक समय था, जब अध्यात्म का प्रशिक्षण पाने के लिए दूसरे देशों के लोग यहां आते थे। वे भारत को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। वर्तमान में भारत

की प्रतिमा कुछ खंडित हुई है। वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित करे, इस दृष्टि से भी आचार्यश्री ने समय-समय पर अपना महत्त्वपूर्ण चिंतन दिया है। भारतीय राजनेता भी यदा-कदा उनके सान्निध्य में पहुंचकर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु सभी मार्ग अवरुद्ध होने की स्थिति में आचार्यश्री के परामर्श से नया मार्ग खुला है। राष्ट्रीय एकता की दिशा में उनके यशस्वी योगदान के आधार पर ही उन्हें 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। सम्मान समारोह के लिए अपने स्वीकृति भाषण में भी उन्होंने मानवीय तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में काम करने की अपनी प्रतिबद्धता को स्वीकार किया। संसदीय गतिरोध की बात उन तक पहुंची। उन्होंने उसी समय से उस विषय में चिंतन करना शुरू कर दिया। एक सप्ताह तक वे प्रतीक्षा करते रहे। उस अवधि में लोकसभा के अध्यक्ष शिवराज पाटिल आदि कुछ विशिष्ट व्यक्ति गतिरोध दूर करने की दिशा में प्रयत्नशील थे। उन्हें सफलता नहीं मिली तो राष्ट्र हितैषी लोगों की चिंता सघन हो गई। उनमें एक नाम आचार्य तुलसी का है।

13 अक्टूबर को आचार्यश्री ने भारतीय राजनीति के विशिष्ट व्यक्तियों को लक्ष्य कर एक महत्त्वपूर्ण संदेश दिया–'संसद का गतिरोध एक सप्ताह पार कर चुका है। दोनों पक्ष–सरकार और प्रतिपक्ष अपने-अपने विचारों को यथार्थ प्रमाणित करने में लगे हुए हैं। इससे राष्ट्रीय संपदा की ही हानि नहीं हो रही है, जनता में उपहास भी हो रहा है। हम लोग दिल्ली में प्रवास कर रहे हैं। सारी स्थिति का निकटता से अध्ययन कर रहे हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता कि राष्ट्रहित के बारे में चिंतन न किया जाता हो। विचार आता है कि प्रत्येक सांसद और संसदीय दल के नेताओं से साक्षात मिलकर इस समस्या के समाधान को खोजने में सहभागी बनें। पक्ष और प्रतिपक्ष के सांसद हमारे निकट संपर्क में हैं, आत्मीय भाव रखने वाले हैं। इसलिए हम अपने आत्मीयजनों से साग्रह अनुरोध करना चाहते हैं कि इस मुद्दे को प्रतिष्ठा का प्रतीक न बनाएं, किंतु राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानकर इसका समाधान खोजना चाहिए।

इस कार्य में महावीर की अनेकान्त दृष्टि और सापेक्ष चिंतन बहुत उपयोगी बन सकता है। प्रत्येक कार्य में पुनर्विचार के लिए अवकाश होता है और होना भी चाहिए। दरवाजा बंद होना अच्छा नहीं होता। साक्षात मिलन हो तो समाधान की विशेष चर्चा की जा सकती है। हर हालत में इस अवरोध को समाप्त करना ही चाहिए। हमारे मुनिजी यह संदेश लेकर आपसे मिल रहे हैं। आशा है, आपका सकारात्मक उत्तर मिलेगा।'

जिन-जिन सांसदों के पास आचार्यश्री का संदेश पहुंचा, उनका सकारात्मक समर्थन मिला। जिन्होंने इस संदर्भ में अपने चिंतन के दरवाजे बंद कर लिए थे, उनके दरवाजों पर एक प्रभावशाली दस्तक हुई। स्वयं प्रधानमंत्री ने इस संदेश का उल्लेख करते हुए कई सांसदों से बात की। कुछ प्रमुख सांसद अध्यात्म साधना केंद्र पहुंचे। उनमें पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह, वित्तमंत्री मनमोहन सिंह. भाजपा अध्यक्ष श्री लालकृष्ण आडवाणी, चुनाव आयुक्त श्री टी.एन. शेषन, लोकसभा के अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल, श्री सोमपालजी, श्री रामचन्द्रजी विकल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने आचार्यश्री के सान्निध्य में बैठ खुलकर विचार-विमर्श किया। राजनैतिक दृष्टि से उलझनपूर्ण स्थिति का अनुभव करने पर भी सब लोगों ने आचार्यश्री की सूझबूझ को दाद दी और यह विश्वास व्यक्त किया कि वे अपनी ओर से गतिरोध को बनाए रखने में निमित्त नहीं बनेंगे।

आचार्यश्री को संदेश दिए चार दिन हो चुके थे। चार दिनों में सांसदों के साथ अच्छा संपर्क बना रहा। उनके वैचारिक उतार-चढ़ाव के संवाद भी मिलते रहे। सांसदों के विचारों पर आचार्यश्री के विचारों का प्रभाव परिलक्षित हो रहा था, किंतु कोई निर्णायक बिंदु उभरकर सामने नहीं आया। 17 अगस्त को लोकसभा के केंद्रीय हॉल में विपक्ष के नेता अटलबिहारी वाजपेयी का सम्मान समारोह था। वह समारोह श्री वाजपेयी के सन् 1994 के 'सर्वश्रेष्ठ सांसद' घोषित होने के उपलक्ष्य में आयोजित था। उसमें लम्बे समय से चले आ रहे संसदीय गतिरोध को दूर करने का निर्णय लिया गया। सभी दलों के सांसदों, मंत्रियों, प्रधानमंत्री और लोकसभा के अध्यक्ष आदि ने इस कार्य में आचार्यश्री द्वारा किए गए सामयिक प्रयत्न के प्रति प्रशंसा के

स्वर मुखरित किए। कुछ नेताओं ने गतिरोध दूर होने से पहले भी वार्तालाप के दौरान अपनी श्रद्धासिक्त भावना प्रकट की।

श्री आडवाणी ने कहा–'आचार्य तुलसी की जो भावना थी, मैंने उसका पालन कर लिया है। मैं जब उनके पास गया, तब तक मेरी मानसिकता नहीं थी। उनके सामने बैठने के बाद न मालूम क्या हुआ, एकाएक मेरा मन बदल गया। मैंने वहां से लौटकर जसवंतसिंह से कहा–रास्ता निकाल लेना चाहिए।'

लोकसभा के अध्यक्ष श्री पाटिल ने कहा–'आचार्य तुलसी ने जो मार्ग दिखाया है, इसी से रास्ता निकलेगा और यही सर्वोत्तम तरीका है। आचार्यश्री का यह सामयिक और सूझबूझपूर्ण योगदान है।'

भाजपा सांसद श्री जसवंतसिंह ने भाजपा नेता श्री आडवाणी के साथ हुई बात का हवाला देते हुए कहा–'आचार्यश्री के विचारों से हमें दिशा मिली है।'

17 अगस्त को प्रातः संसदीय गतिरोध दूर हुआ। उसी दिन रात्रि में लगभग आठ बजे प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हाराव ने अध्यात्म साधना केंद्र में आचार्यश्री के दर्शन किए। उनकी वंदना की भावपूर्ण मुद्रा देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई समर्पित शिष्य अपने गुरु से साक्षात्कार के क्षणों में भावविह्वल हो रहा है। वार्तालाप के प्रसंग में प्रधानमंत्री ने कहा–'आचार्यश्री! संसदीय गतिरोध दूर करने में आपके संदेश का अच्छा प्रभाव रहा।' आचार्यश्री बोले–'आपने समय पर गतिरोध समाप्त करने का निर्णय ले लिया, इसके लिए साधुवाद। संसद में ऐसा होने से बाहर उसकी प्रतिक्रिया ठीक नहीं होती। ऐसी स्थिति में हमारा दायित्व हो जाता है कि हम इस विषय में कुछ सोचें।' प्रधानमंत्री ने आचार्यश्री के कथन को अधिमान देते हुए कहा–'हां, ऐसा होना चाहिए। इससे हम लोगों को भी एक दिशा मिलती है।'

प्रधानमंत्री लगभग पचास मिनट तक आचार्यश्री के सान्निध्य में रहे। उन्होंने राष्ट्र की विविध समस्याओं के बारे में आचार्यश्री के साथ विचार-

विमर्श किया। लोकतंत्र की शुद्धि और शिक्षाप्रणाली में सुधार के लिए आचार्यश्री के सान्निध्य में चल रहे व्यापक अभियान और लाडनूं में स्थित मान्य विश्वविद्यालय के बारे में भी प्रधानमंत्री को जानकारी दी गई।

18 और 19 अगस्त के समाचारपत्रों ने संसदीय गतिरोध को समाप्त करने में आचार्यश्री के महत्त्वपूर्ण अवदान के संवाद विशेष रूप से प्रकाशित किए। इससे पूरे देश में एक वातावरण बना। आचार्यश्री का कर्तृत्व एक बार फिर मुखर हो उठा। इस संदर्भ में अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों ने कहा–'अब अयोध्या की समस्या का हल खोजने के लिए आचार्यश्री को आगे आना चाहिए।' कुछ लोग बोले–'आचार्यश्री राष्ट्र के लिए इतना काम करते हैं, इसीलिए तो इन्हें 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।'

आचार्यश्री का जीवन सम्मान और अपमान–दोनों की अतियों का साक्षी रहा है। उनके धवल समारोह (आचार्यकाल की रजत जयन्ती) और षष्टिपूर्ति जैसे प्रसंगों पर भारत के उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति ने स्वयं उपस्थित होकर उनका सम्मान किया तो अग्निपरीक्षा कांड में उन पर गालियों और पत्थरों की बौछार भी हुई। इन दोनों स्थितियों में आचार्यश्री ने जिस संतुलन और स्थितप्रज्ञता का परिचय दिया, उससे वे पूरे युग के लिए प्रणम्य बन गए।

8. शांति और समझौते का सार्थक प्रयास

ईस्वी सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। उस वर्ष आचार्यश्री राजस्थान के रतनगढ़ कस्बे में चातुर्मास बिता रहे थे। देश की स्वतंत्रता से उन्हें कम प्रसन्नता नहीं थी, पर वे उसके साथ देशवासियों पर आए दायित्व की गुरुता को भी समझ रहे थे। एक संत की हैसियत से उनके लिए प्रांतीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं अर्थ खो चुकी थीं। वे मानवीय एकता और विश्वमानव की हित-चिंता से प्रतिबद्ध थे। फिर भी विहारक्षेत्र और कार्यक्षेत्र की दृष्टि से वे भारतीयता से ऊपर नहीं थे। यही कारण है, उन्होंने स्वतंत्र भारत को आध्यात्मिक एवं नैतिक दृष्टि से समृद्ध बनाने का निर्णय लिया। दो वर्षों के सघन चिंतन, मंथन और निष्कर्षों के बाद उन्होंने विधिवत अणुव्रत आंदोलन का कार्यारंभ कर दिया। अणुव्रत क्या है? हिंसा, जातिवाद, संप्रदायवाद, शोषण और अनैतिकता की व्यूह-रचना को भेदने का एक छोटा, किंतु शक्तिशाली उपक्रम है अणुव्रत। अणुव्रत मिशन को लेकर आचार्यश्री ने लगभग पूरे देश की पदयात्रा की है। उनकी पदयात्राओं ने लोकजीवन पर अमिट प्रभाव छोड़ा है।

सन् 1985 में आचार्य का चातुर्मासिक प्रवास आमेट (उदयपुर) था। उन दिनों पंजाब की समस्या सिर उठाए खड़ी थी। हिंसा और आतंक का वातावरण था। जनजीवन अशांत था। आचार्यश्री स्वयं पंजाब जाकर वहां की जनता और उग्रवादी संगठनों को शांति का संदेश देना चाहते थे, किंतु एक विशेष उद्देश्य से निर्धारित उनकी भावी यात्रा को टालना संभव नहीं था। इसलिए वे पंजाब नहीं जा सके, पर उनकी दृष्टि सदा पंजाब की ओर लगी रही। इतना ही नहीं, उन्होंने आतंक के उस माहौल में भी अपने

शिष्य-शिष्याओं को पंजाब में काम करने का निर्देश दिया। आचार्यश्री यहीं पर रुके नहीं। पंजाब में शांतिमय, सौहार्दपूर्ण और समन्वय का वातावरण बनाने की दृष्टि से उन्होंने भारत सरकार और अकालीदल के नेताओं तक अपने मौलिक विचार पहुंचाए। उल्लेखनीय है कि दोनों पक्षों ने उन विचारों का स्वागत किया।

इसी संदर्भ में समाज के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री शुभकरण दसानी अकालीदल के अध्यक्ष श्री हरचन्दसिंह लौंगोवाल से मिले। उन्होंने आचार्यश्री का एक विशेष संदेश उनको दिया। श्री लौंगोवाल ने आचार्यवर के विचारों के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट किया और अपने विचार लिखित रूप में दिए। वैचारिक आदान-प्रदान के बाद राष्ट्र संत आचार्य तुलसी और संत लौंगोवाल के मिलन का कार्यक्रम निश्चित हो गया। भारत सरकार तक इसकी सूचना भेज दी गई।

9 जुलाई 1985 को प्रातः संत हरचन्दसिंह लौंगोवाल और श्री सुरजीतसिंह बरनाला प्लेन द्वारा दिल्ली से उदयपुर पहुंचे। उदयपुर से कार द्वारा वे लगभग एक बजे आमेट के तेरापंथ सभाभवन में पहुंच गए। उत्साह, उत्सुकता और प्रेमपूर्ण वातावरण में दोनों संत मिले। यह मिलन नितांत औपचारिक था, इसलिए लोगों की भीड़ में ही हुआ। अपराह्न में लगभग चार बजे से पौने छह बजे तक आचार्यवर और लौंगोवालजी के बीच गंभीर विचार-विमर्श चला। उस समय युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ, श्री सुरजीतसिंह बरनाला, श्री शुभकरण दसानी आदि कुछ नामांकित व्यक्तियों की उपस्थिति थी। वार्तालाप के बाद पत्रकारों की जिज्ञासा पर दोनों मनीषियों ने कहा कि उनकी बातचीत अनेक मुद्दों पर विस्तार के साथ हुई है। दोनों ने ही वार्तालाप के संदर्भ में पूर्ण संतोष और प्रसन्नता का अनुभव किया।

उसी दिन रात्रि में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन था। उपस्थिति लगभग पंद्रह हजार की थी। श्री लौंगोवाल ने अपने वक्तव्य में कहा– 'महाराणा प्रताप की इस पवित्र धरती पर मुझे आचार्य तुलसी जैसे महान संतों से मिलने का अवसर मिला, यह मेरा सौभाग्य है। आपके साथ

बातचीत कर मुझे गौरव का अनुभव होता है। मैं आज यहां उपस्थित संगत के सामने कुछ कहना चाहता हूं। मैं पहली बात यह कह रहा हूं कि आज देश को शांति की जरूरत है। इस समय हिंसा के जो बादल छाए हुए हैं, उन्हें हटाने में आचार्य तुलसी जैसे महान संतों का बड़ा योगदान हो सकता है। दूसरी बात यह है कि सिख जाति को बदनाम करने के लिए देश में मुख्य रूप से तीन बातें प्रचारित की जा रही हैं–

- सिख आतंकवादी हैं।
- सिख अलगाववादी हैं। वे देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं।
- सिख हिन्दुओं के दुश्मन हैं।

मैं कहना चाहता हूं कि सिख आतंकवादी हैं तो उच्चतम न्यायालय के द्वारा जांच होनी चाहिए और दोषी व्यक्तियों को सजा मिलनी चाहिए।

हमारी पार्टी शिरोमणि अकालीदल ने कभी खालिस्तान की मांग नहीं की। हमने देश की एकता और अखंडता के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की है।

सिखों ने हिन्दुओं के साथ भाईचारे का व्यवहार किया है। गुरु तेगबहादुर आनंदपुर साहब से चलकर दिल्ली आए और उन्होंने औरंगजेब को चैलेंज दिया कि यदि हिन्दुओं के मंदिरों को गिराया गया, उन्हें तिलक लगाने से रोका गया और उनके जनेऊ उतराए गए तो वह इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे। हिन्दुओं और मंदिरों की रक्षा हेतु वे बलिदान होने के लिए कटिबद्ध थे।'

श्री लौंगोवाल ने अपने लम्बे भाषण को समाप्त करते हुए कहा–'मैं आचार्य तुलसी, उनकी संत मंडली और आप सब लोगों के प्रति आभारी हूं। मैं विश्वास करता हूं कि जिस उद्देश्य से यह संगत आयोजित हुई है, उसमें कामयाबी मिलेगी। मुझे प्रेसवालों ने पूछा कि आप दोनों के मिलन में पहल किसने की? मैंने उनसे कहा कि हम दोनों के प्यार ने हमें एक-दूसरे से मिलाया है।

मुझे तो ऐसा महसूस हो रहा है कि हम एक जन्म से नहीं, दो जन्म से नहीं, बल्कि कई जन्मों से इकट्ठे होते रहे हैं, आपस में मिलते रहे हैं।'

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री ने लौंगोवाल के साथ हुए वार्तालाप का हवाला देते हुए अपने वक्तव्य में कहा–'संत लौंगोवाल के विचारों से मैं प्रभावित हुआ हूं। देश की अखंडता के प्रति इनके मन में अटूट विश्वास है। हिंसा को लेकर इनके मन में गहरी पीड़ा है। आतंकवाद के प्रति इनके मन में अथाह घृणा है। आतंकवादियों और हिंसकों की कोई जाति नहीं होती। ये किसी भी जाति में हो सकते हैं। इन्हें किसी जाति या वर्गविशेष के साथ नहीं जोड़ना चाहिए। मैं इस संदर्भ में अपनी ओर से कुछ बातें कहना चाहता हूं–

- समस्या का समाधान बातचीत के द्वारा होना चाहिए।
- बातचीत के लिए स्वस्थ और विश्वस्त वातावरण का निर्माण होना चाहिए। जनता और सरकार दोनों के सहयोग और सद्भावना से ही ऐसा वातावरण बन सकता है।
- हिंसा कहीं भी हो और किसी भी व्यक्ति या वर्ग के द्वारा हो, उसकी भर्त्सना होनी चाहिए।
- कोई व्यक्ति गलत हो सकता है, किंतु उसके कारण पूरी कौम को गलत बताने या बदनाम करने का कोई औचित्य नहीं है। गलत या बुरे व्यक्ति किस कौम में नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों के कारण पूरी कौम को दोषी करार देना ठीक नहीं है। सिख कौम एक बहादुर कौम है। वह राष्ट्रभक्त है। उसकी देशभक्ति के प्रति संदेह नहीं होना चाहिए। कुछ व्यक्तियों के कारण सारे सिखों के प्रति अविश्वास करना उनके प्रति न्याय नहीं होगा। जहां कहीं भी जख्म हुआ है, उसे मरहमपट्टी करके ठीक करना चाहिए।'

संत लौंगोवाल के आमेट पहुंचने पर प्रथम दिन मध्याह्न में चार बजे से पौने छह बजे तक दोनों संतों के मध्य जो वार्तालाप हुआ, वह इस प्रकार है–

आचार्यश्री तुलसी : यह आपकी राजस्थान की पहली यात्रा है?

लौंगोवाल : हां, इस रूप में यहां हमारा पहली बार ही आना हुआ है।

आचार्यश्री : मेरे मन में सिख संतों के प्रति सदा से ऊंची भावना रही है। जहां भी हमारा संतों से मिलन हुआ, उसमें मधुरता की पुट रही। इधर बहुत दिनों से इच्छा थी कि एक बार आपसे मिलें। हमारा मिलन नितांत

वैयक्तिक स्तर पर है। क्योंकि हम पूरी तरह से तटस्थ हैं। न हमें सरकार से कुछ लेना-देना है और न ही दूसरों से। हमें कुछ कहना होगा तो आपको भी कहेंगे, सरकार को भी। हमारी बातचीत भी तटस्थता के आधार पर होगी।

लौंगोवाल : हमारे मन में आपके प्रति श्रद्धा है, विनय है। हम भी चाहते थे कि आपसे मिलें।

आचार्यश्री : एक दृष्टि से देखा जाए तो जैन और सिख दोनों एक स्थिति में हैं। इसका कारण है हिन्दू धर्म की अलग पहचान। मेरे अभिमत से हिन्दू एक समाज है, संस्कृति है, जाति है। इसे धर्म मानने से ही गड़बड़ी पैदा होती है।

लौंगोवाल : आपके विचार बड़े सुंदर और पवित्र हैं। सभी महापुरुष देश में शांति चाहते हैं। आपने इतनी दूरी पर बैठकर भी पंजाब में शांति पैदा करने के लिए प्रभु से प्रार्थना की और प्रयत्न भी किया। मेरे मन में भी यही विचार है, इसीलिए मैं आपके पास आया हूं।

आचार्यश्री : आपकी दृष्टि में अशांति का मूल कारण क्या है?

लौंगोवाल : सरकार की गलत नीति। देश में जब कभी अशांति होती है, सरकार की गलत नीति उसमें निमित्त बनती है। सरकार समूचे मुल्क को अपना समझकर काम करे तो अशांति नहीं हो सकती। दूसरी बात, जब आदमी परमेश्वर को भूल जाता है, तब अशांति होती है।

आचार्यश्री : आपके विचार से इस अशांति को दूर कैसे किया जा सकता है?

लौंगोवाल : दो साधन हैं। पहला है परमेश्वर की प्रार्थना, आराधना और पूजा। यह बड़ा हथियार है शांति पैदा करने का। परमेश्वर से हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि वह सरकार को सन्मति दे ताकि वह अपनी गलत नीति छोड़कर सही काम करे। देश की अशांति दूर करने के लिए आप जो उद्यम कर रहे हैं, बड़ी बात है। मुझे ऐसा लगता है कि देश में शांति आ जाएगी।

आचार्यश्री : सरकारी नीतियों के अतिरिक्त देश की शांति के लिए आप किस बात की अपेक्षा महसूस करते हैं?

लौंगोवाल : देश की जनता को परस्पर प्रेम और सौहार्द से रहने की प्रेरणा होनी चाहिए। इस बिगड़े हुए माहौल को सुधारकर दोनों पक्षों को नजदीक लाया जाए तो कोई रास्ता बन सकता है।

आचार्यश्री : हमने सुना है और पढ़ा भी है। आपके प्रयास से वातावरण में मोड़ आ रहा है। यह बहुत खुशी की बात है। एक बात और है, इस वातावरण को यदि जल्दी ठीक कर लिया जाए तो देश को ज्यादा फायदा होगा। क्या ऐसा तीव्र और प्रभावी प्रयत्न नहीं हो सकता?

लौंगोवाल : जल्दी और बहुत जल्दी समाधान होना चाहिए, किंतु ऐसा तभी संभव होगा, जब सरकार अपनी नीति में परिवर्तन करेगी।

आचार्यश्री : आपकी दृष्टि से गलत नीति क्या है?

लौंगोवाल : सबसे पहले तो फूट डालने की नीति ही गलत है। 'फूट डालो और राज करो' की नीति नई तो नहीं है?

आचार्य श्री : इससे सरकार को क्या लाभ होगा?

लौंगोवाल : यह राजनीति ही ऐसी है। अपनी गद्दी बचाने के लिए कुछ भी किया जा सकता है। आज हिन्दुस्तान के हर हिस्से में झगड़ा हो रहा है। हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़ा, हिन्दू-सिखों के बीच झगड़ा, क्या इसे सरकार देख नहीं रही है?

आचार्यश्री : सिखों-सिखों में फूट पड़ने का क्या कारण है?

लौंगोवाल : कैसे?

आचार्यश्री : जैसे सिखों में उग्रवादी पनपे हैं। उनकी क्या स्थिति है?

लौंगोवाल : कोई सिख उग्रवादी क्यों बनता है और क्यों नहीं, इसके अलग कारण हैं। उग्रवादियों के साथ हमारा कोई संबंध नहीं है। हमारी पार्टी अकालीदल पुरानी पार्टी है। अंग्रेजों के समय से हम देश के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हमारे संघर्ष का तरीका सदा शांतिपूर्ण रहा। उस समय भी हमने मार खाई थी। गांधीजी हमारे बारे में कहा करते थे कि पीसफुल आंदोलन अगर कहीं है तो पंजाब में है। इस आंदोलन में भी हमारे दो लाख पचीस हजार लोग गिरफ्तार हुए, पर हम शांत रहे।

आचार्यश्री : यह प्रसन्नता की बात है कि आप और हम, सब हिंसा के खिलाफ हैं। हिंसा कहीं भी हो और किसी के द्वारा हो, वह गलत है। यह बात हमें खुलकर कहनी चाहिए। इससे आम जनता में एक अच्छी धारणा बनती है।

दूसरी बात, जो सरकारी नीति के बदलाव की है, क्या उसके लिए सरकार के साथ बैठकर बातचीत करना जरूरी नहीं है? गलतियां किसी तरफ से हों, परस्पर में गलतफहमियां भी हो सकती हैं। बात करने से वे दूर हो सकती हैं, गलतियां भी मिट सकती हैं।

लौंगोवाल : इस संबंध में हमने कोई दो दर्जन मीटिंग्स कर ली हैं। आठ-नौ मीटिंग्स इन्दिराजी के साथ हुईं। जिनमें बरनाला, बादल, टोहरा और मैं सभी थे। इन्दिराजी ने कहा–'सब मिलकर तय कर लो।' उनके निर्देश से सब पार्टियों ने मिलकर कुछ बातें तय कीं। हमने जो मसला सरकार के सामने रखा, उस बारे में सरकार की ओर से कुछ नहीं हुआ। सत्तारूढ़ पार्टी, विरोधी पार्टी और हमारी पार्टी ने मिलकर एक त्रिआयामी प्रयत्न भी किया था, पर लगता है कि सरकार कुछ करना नहीं चाहती, इसलिए कोई नतीजा नहीं निकलता।

आचार्यश्री : अब तो सरकार बदल गई है। क्या आप यह ठीक नहीं समझते कि एक बार फिर आजमाइश करके देखा जाए। आपकी उस बातचीत का कोई सार नहीं निकला तो क्या यह जरूरी है कि इस बार भी सार नहीं निकलेगा। संभव है कोई परिणाम निकल जाए?

लौंगोवाल : बातचीत से पहले पंजाब का माहौल ठीक होना चाहिए। सरकार चाहती तो पहले दिन ही स्थिति संभाल लेती। कुछ दिन बाद फौज को आदेश हुए। क्या वे पहले नहीं हो सकते थे?

अभी जो स्पेशल कोर्ट बने हैं, वे भी केवल सिखों के लिए हैं। वे कोर्ट उनके लिए नहीं हैं, जिन्होंने कत्ल किए, आग लगाई, प्रॉपर्टी लूटी, और भी न जाने क्या-क्या किया? इस सिलसिले में हजारों लोग पकड़े गए। प्रॉपर्टी भी बरामद हुई, पर आज उनमें से कोई भी अंदर नहीं है और न ही उन पर कोई मुकदमा चल रहा है। जबकि सिखों के विरुद्ध सैकड़ों केस हैं।

चौदह-पंद्रह साल के बच्चों पर केस हैं। इस बात का हमारे मन में रंज है कि हमारे साथ ऐसा सलूक क्यों हो रहा है?

आचार्यश्री : सरकार इस रूप में कोई भी काम करेगी तो विपक्षी दल चुप थोड़े ही रहेंगे? वे तो एक-एक मिनट की खबर रखते हैं। विरोधी पार्टियों के लोग आपकी समस्या सुनकर आपका साथ दें तो सरकार को आंख हो सकती है।

लौंगोवाल : हम अपोजीशन लीडर्स से भी मिले हैं, पर वे भी जानते हैं कि सिखों का साथ दिया तो हिन्दुओं के वोट टूट जाएंगे। सबको इलेक्शन जीतने की चिंता रहती है। तटस्थ रूप में काम करने वाले कितने लोग हैं?

सरकार हमारी हर बात को गलत समझ रही है, जबकि आनंदपुर साहब प्रस्ताव में अलगाव की कोई बात है ही नहीं। हमारी तो मांग ही इतनी है कि विधान के अंतर्गत राज्यों को पूरे अधिकार मिलने चाहिए।

आचार्यश्री : आपकी और मांगें क्या हैं?

लौंगोवाल : हमारी मांगें इस प्रकार हैं–

- देश में कानून और अदालतें सबके लिए हैं। आज तक जहां, जितने दंगे हुए हैं, उन सबकी सही जांच होनी चाहिए।
- दंगों में जिन लोगों का नुकसान हुआ है, उन्हें व्यवस्था देनी चाहिए।
- जिन निर्दोष लोगों को बंदी बना रखा है, उन्हें छोड़ देना चाहिए।
- फौजियों के विरुद्ध बगावत का आरोप है, किंतु उन्होंने देश के खिलाफ बगावत नहीं की। अपने धर्म की हानि के संवाद सुनकर वे आवेश में आकर अमृतसर की ओर भागे थे। उन फौजियों के साथ नर्मी का व्यवहार होना चाहिए।

सन् 1965 में पाकिस्तान के साथ जंग में कोई ढाई-तीन हजार फौजी दुश्मन की गोली लगने पर वर्दियां उतारकर भाग गए। चीन की लड़ाई में कई सैनिक चीन से डरकर भागे, किंतु उनके लिए न तो कोई एक्शन लिया गया और न उन्हें कोई सजा दी गई। जबकि देश के लिए बलिदान होने की भावना रखने वाले हमारे फौजी सजा भुगत रहे हैं।

पंजाब को डिस्टर्ब एरिया करार देकर यहां सेना की गश्ती आगे-से-आगे बढ़ाई जा रही है। आखिर क्यों?

जब हम जेल में थे, हमने कहा था कि तेरह अप्रैल तक हमारी मांगें मंजूर नहीं होंगी तो हम आंदोलन को तेज करेंगे। ग्यारह अप्रैल तक कुछ नहीं हुआ। तब हमने बारह को मीटिंग कर नया फैसला करने का निर्णय लिया। इस बीच ग्यारह को प्रधानमंत्री ने ऑर्डर दिया कि दिल्ली के उपद्रवों की जांच होगी। सिख छात्र फेडरेशन पर से पाबंदी हटा ली जाएगी और बेकसूर लोगों को रिहा किया जा रहा है।

बारह अप्रैल की मीटिंग में हमने अपना पूर्व चिंतित निर्णय बदलकर फैसला लिया कि सरकार जब पोजिटिव रुख अपना रही है तो हमें भी आंदोलन स्थगित कर देना चाहिए, किंतु फिर उधर से कोई बात नहीं उठी। इस स्थिति में संगरूर में एक मीटिंग बुलाकर हमने अपनी नई पॉलिसी तय की। उसके अनुसार देश की अखंडता में हमारा विश्वास है। हम अखंडता के लिए संघर्ष करते रहे हैं। हमने देश के लिए कुर्बानी की है और भविष्य में भी करते रहेंगे।

आचार्यश्री : एक ओर देश के लिए कुर्बानी की बात। दूसरी ओर अलग राज्य की मांग। क्या यह विसंगति नहीं है?

लौंगोवाल : यह बात गलत है। जिसका भी दिमाग थोड़ा-सा ठीक है, वह देश में रहता हुआ अलग राज्य की बात कह ही नहीं सकता।

आचार्यश्री : अखबारों में ऐसी बातें बार-बार आती हैं।

लौंगोवाल : वे सब बाहर से आती हैं। खालिस्तान का नारा सिखों को बदनाम करने के लिए है।

आचार्यश्री : आपके यहां आने के संवाद से देश में हलचल मच गई।

लौंगोवाल : हमें भी पूछा गया कि आप आचार्यश्री के साथ किस विषय की बात करेंगे? मैंने कहा–'हम दोनों संत हैं। हम शांति की बात करेंगे।'

आचार्यश्री : हमने बात की है। एक-दूसरे की बात सुनी है। हमारा उद्देश्य शांति है। हमारी बातचीत का आधार भी धार्मिक विचार है। इस

बातचीत में हमने अपनी संस्था की जानकारी दी है। मूलतः बात यह है कि हमारा मंच राजनैतिक नहीं है। धार्मिक मंच पर राजनीति की बात न आए। हम शांति की चर्चा करें, हिंसा के खिलाफ चर्चा करें और हमारी यह चर्चा पंजाब में सुख-शांति लाने में सहयोगी बने, यही कामना है।

युवाचार्यश्री : आचार्यश्री के पास संतों की बड़ी फौज है। यदि आप चाहेंगे तो आचार्यश्री वहां संतों को भी भेजेंगे।

लौंगोवाल : वह तो मैं निवेदन नहीं करूंगा तो भी भेजेंगे।

आचार्यश्री : आपकी बात से यह ज्ञात हुआ कि आप देश की अखंडता चाहते हैं। आतंकवाद और अलगाववाद की मांग आपकी नहीं है। बावजूद इसके देश के जो हालात हैं, अच्छे नहीं हैं। हम लोग जब इन सब स्थितियों को देखते हैं, सुनते हैं और पढ़ते हैं तो मन में आता है कि हमें कुछ करना चाहिए। दर्दी दिलों को शांति मिले, ऐसा प्रयत्न होना चाहिए।

लौंगोवाल : सिखों के दिलों में जो चोट लगी है, वहां जो घाव हुए हैं, उन पर कुछ मरहम सरकार लगाए और कुछ हम लोग लगाएं तो माहौल में चेंज आ सकता है।

आचार्यश्री : आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। हमारी पौने दो घंटे की बात में एक क्षण के लिए भी आपके चेहरे या वाणी में आक्रोश और उत्तेजना की झलक नहीं मिली। शांति और सौम्यता को देखकर ही ऐसी प्रतीति होती है कि सचमुच संत-मिलन हुआ है।

9. दो ध्रुवों का मिलन

व्यवहार व्यक्तित्व का आईना होता है। जिस व्यक्ति का व्यवहार जितना शिष्ट और विनम्र होता है, वह उतना ही महान होता है। जो व्यक्ति किसी से कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रखता, पर अपने दायित्व के प्रति सतत जागरूक रहता है, वह महान होता है। ऐसे व्यक्ति समाज और देश के लिए आश्वासन होते हैं। देश में अस्थिरता/अनिश्चय का समय होता है, तब महान व्यक्तियों की अपेक्षा बढ़ जाती है। वे समय के सूत्र को हाथ में लेते हैं, अटूट धृति के साथ परिस्थितियों का मुकाबला करते हैं और बंद दरवाजों को खोलकर चैतन्य का सूरज उगा देते हैं। जिस समाज, संस्थान या देश का नेतृत्व इतना सक्षम होता है, वह कभी शक्तिहीन नहीं हो सकता।

हमारे देश में दो प्रकार के नेतृत्व की परंपरा रही है–आध्यात्मिक और राजनीतिक। अध्यात्म और राजनीति दो ध्रुव हैं। दोनों ध्रुवों की अलग सत्ता है, अलग पहचान है और अलग क्षेत्र हैं। ये दोनों दो रहकर ही अपनी सार्थकता को प्रमाणित करते हैं। फिर भी एक बिंदु ऐसा है, जहां इन दोनों का मिलन जरूरी है। क्योंकि अध्यात्म से असंपृक्त रहकर राजनीति अनीति के चक्रव्यूह में फंस जाती है। इसी प्रकार राजनीति/सत्ता के सहयोग बिना अध्यात्म लोकजीवन तक सरलता से नहीं पहुंच सकता। अध्यात्म और राजनीति के मिलन में संभावनाओं की नई खिड़कियों को खुलता हुआ देखा जा सकता है। हमारे इतिहास की बुनावट में भी इन दोनों शक्तियों का कर्तृत्व उजागर है। जब कभी इन दो शक्तियों के मिलन का प्रसंग उपस्थित होता है, चारों ओर नया उल्लास बिछ जाता है और उत्साह बढ़ जाता है। 5 नवम्बर 1987 का दिन कुछ ऐसा ही उल्लासवर्धक था, जिसकी स्मृतियां मन में एक मीठी गुदगुदी भर जाती हैं।

रात के बारह बजे तारीख बदलती है। उस दिन तारीख बदलने के साथ ही 'अणुव्रत भवन' में नया बदलाव शुरू हो गया। फोन की घंटियों की झनझनाहट, सुरक्षा अधिकारियों की फुसफुसाहट और समाज के कार्यकर्ताओं की जागरूक मंत्रणा। आचार्यश्री उस समय गहरी नींद में सोए हुए थे। कन्हैयालालजी पटावरी वहां आए। मुनि मधुकरजी जग गए। पटावरीजी बोले–'फोन पर सूचना मिली है कि प्रधानमंत्री राजीव गांधी प्रातः दस बजे आचार्यश्री से मिलने के लिए अणुव्रत भवन आ रहे हैं।' यह संवाद आचार्यश्री तक पहुंचाना जरूरी था, पर नींद में व्यवधान डालना ठीक नहीं लगा। पटावरीजी लौट गए। लगभग डेढ़ बजे आचार्यश्री की नींद टूटी। मुनि मधुकरजी ने प्रधानमंत्री के आगमन की सूचना दी। आचार्यश्री को पूरा भरोसा नहीं हुआ। यद्यपि विश्वस्त और प्रधानमंत्री के निकट सूत्रों से बहुत दिनों से यह संवाद मिल रहा था कि वे आचार्यश्री से मिलना चाहते हैं, पर इतना आकस्मिक रूप से कोई कार्यक्रम बन जाएगा, यह कल्पना नहीं थी। आचार्यश्री पुनः लेट गए। प्रातः चार बजे उठे, तब तक इस बात की पुष्टि हो चुकी थी। सूर्योदय के साथ-साथ अणुव्रत भवन के चारों ओर पुलिस बिछ गई। आसपास रहने वाले लोग और आगंतुक यात्री रात को सोए, तब तक कोई बात नहीं थी। वे लोग सोकर उठे तो चारों ओर पुलिस देखकर हैरान हो गए। क्या बात है? कौन आ रहे हैं? कब आ रहे हैं? क्या होने वाला है? आदि प्रश्नचिह्नों से घिरे लोग समाधान की खोज में एक दूसरे से पूछने लगे, पर किसी को कोई जानकारी नहीं थी। आखिर अधिकृत रूप में सबको यह बताया गया कि भारत के प्रधानमंत्री अणुव्रत भवन आ रहे हैं।

भारतीय संस्कृति का दर्शन

प्रातः दस बजे का समय। अणुव्रत भवन का विशाल सभागार। सभागार के बीच में रखे हुए पट्ट पर आचार्यश्री पूर्वाभिमुख आसीन थे। उनके निकट ही एक छोटे पट्ट पर युवाचार्यश्री बैठे थे। दाईं ओर साधु-समुदाय उपस्थित था। बाईं ओर साध्वियां बैठी थीं। पट्ट के ठीक सामने एक कुर्सी बिछी हुई थी। उसके पीछे श्रावक लोग बैठे थे। एक ओर कुछ बहनें एवं भाई

सामायिक कर रहे थे। अणुव्रत भवन के चारों ओर से ट्रैफिक बंद हो गया। पुलिस अपनी ड्यूटी पर तैनात थी। भवन के भीतर सुरक्षा अधिकारी अपनी जांच पूरी कर चुके थे। सभागार में उत्सुकता-मिश्रित खामोशी व्याप्त थी। घड़ी की छोटी सुई दस के अंक पर स्थिर थी। सैकंड की सुई तेजी से घूम रही थी। उसके साथ धीरे-धीरे सरकती हुई बड़ी सुई दो अंक पर पहुंची। दस बजकर दस मिनट पर अणुव्रत भवन के सामने एक कार आकर रुकी। प्रधानमंत्री उतरे। सभागार का दरवाजा खुला। दरवाजे में पांव रखते ही प्रधानमंत्री ने नीचे झुककर जूते उतारे। सामने आचार्यश्री विराजमान थे। **चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं** आगम का यह वाक्य आंखों के सामने आ गया, जब प्रधानमंत्री ने आचार्यश्री से साक्षात्कार होते ही दूर से हाथ जोड़कर अभिवादन किया। समाज के प्रमुख कार्यकर्ता रास्ते में खड़े थे। उनसे हाथ मिलाते हुए और अपनी निश्छल मुस्कान बिखेरते हुए वे आए। निकट से झुककर आचार्यवर को नमन किया और सामने रखी कुर्सी पर बैठने लगे। पूरे बैठे ही नहीं कि प्रधानमंत्री उठकर खड़े हो गए। अपने हाथों से कुर्सी को हटाते हुए वे बोले–'आपके सामने ऊपर बैठना कुछ अजीब-सा लगता है।' निकट खड़े कार्यकर्ताओं ने आग्रह किया, किंतु वे फर्श पर बिछे कालीन पर विनम्र भाव से बैठ गए। **विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि**–तपोवन में ऋषि-मुनियों के पास जाते समय कैसा व्यवहार किया जाता है, इस संस्कृति से हमारे प्रधानमंत्री संभवतः परिचित थे। उनके नीचे बैठने से उनका कद कितना ऊंचा उठ गया, यह वहां बैठे लोगों ने स्पष्ट रूप से अनुभव किया। आचार्यश्री ने मंगल आशीर्वाद की वर्षा करते हुए कहा–'इससे पहले हम बीकानेर में मिले थे। वह प्रसंग आपको याद होगा?' प्रधानमंत्री आचार्यश्री के कथन से सहमत होते हुए बोले–'मुझे अच्छी तरह याद है।' आचार्यश्री ने उस समय हुए वार्तालाप की स्मृति दिलाते हुए कहा–'बीकानेर में हमारी बात केवल पंद्रह मिनिट ही हुई थी, पर वह थी बहुत महत्त्वपूर्ण।' प्रधानमंत्री एक बार छह वर्ष पीछे छूटे हुए अतीत में लौटे और उस समय की स्मृतियों से सराबोर होकर पुनः वर्तमान में पहुंच गए।

रचनात्मक ऊर्जा का उद्‌भव

'आज दो महान व्यक्तियों का मिलन हो रहा है। एक व्यक्तित्व सत्ता के शीर्ष पर आसीन है। दूसरा व्यक्तित्व अध्यात्म के शिखर पर आरूढ़ है। दोनों की आंखों में एक स्वस्थ, समुन्नत और चरित्रसंपन्न राष्ट्र के निर्माण का सपना है। दोनों ओर से स्वप्न को सत्य में बदलने के प्रयत्न हो रहे हैं। इस स्वप्न के साकार होने में चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता, हिंसा, आतंक, अलगाववादी मनोवृत्तियां आदि कुछ ऐसी बाधाएं हैं, जिनका मुकाबला करने के लिए जुझारू संघर्ष की जरूरत है। ये दोनों व्यक्तित्व उस संघर्ष की आस्था से संपन्न हैं। ये दोनों ही ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनके युवा कंधों पर नेतृत्व का दायित्व एक साथ आ गया था। दायित्व-निर्वाह की क्षमता दोनों में बेजोड़ है। अणुव्रत भवन में इन दो व्यक्तियों के मिलन से जो रचनात्मक ऊर्जा प्रकट होगी, जो नई दिशा खुलेगी, उससे हमारे राष्ट्र में एक नए युग का उदय होगा, ऐसा विश्वास है।' इन विचारों के साथ मैंने उस गोष्ठी का प्रारंभ किया, जो सार्वजनिक रूप में समायोजित थी। मेरे वक्तव्य से पहले टोडरमलजी लालानी ने तेरापंथ समाज की ओर से प्रधानमंत्री का स्वागत किया। उन्होंने श्रमण परंपरा के संवाहक आचार्यश्री तुलसी और देश के प्रधानमंत्री के मिलन-प्रसंग पर प्रसन्नता व्यक्त की।

समस्या है तो समाधान भी है

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ जितने दार्शनिक हैं, उतने ही योगी हैं। वे दर्शन की भूमिका पर खड़े होकर अपने समाज और देश की ही नहीं, विश्व की समस्याओं को देखते हैं। जो समस्या को सही कोण से देखता है, वही उसका समाधान खोज पाता है। युवाचार्यश्री जब योगी की भूमिका पर आरूढ़ होते हैं तो किसी भी समस्या को असमाहित नहीं छोड़ते। समाधान की नई दृष्टि देते हुए उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा–'समाज हो और समस्या न हो, यह कभी संभव नहीं है। एक से दो होने का अर्थ ही है समस्या को निमंत्रण। समस्या हो और उसका समाधान न हो, यह भी संभव नहीं है। मेरे अभिमत से समस्या का समाधान है अनेकान्त दृष्टि। इस दृष्टि का पूरा उपयोग हो तो कोई समस्या टिक नहीं सकती। केवल राजनीति, समाजनीति

या धर्मनीति के पास समाधान नहीं मिलेगा। राजनीति, समाज और धर्म के लोग मिल-जुलकर प्रयत्न करें तो सहज रूप से समाधान निकल आएगा। आचार्यश्री ने अणुव्रत के माध्यम से समन्वित दृष्टि को विस्तार दिया है। समन्वयमूलक दृष्टि ही समस्याओं का स्थायी समाधान है।'

मानवीय बुनियाद का निर्माण

आचार्यश्री तुलसी का व्यक्तित्व इंद्रधनुषी है। वे इंद्रधनुषी सपने देखते हैं और उन्हें पूरा करने के लिए बहुआयामी प्रयत्न करते हैं। वे सामाजिक एवं राष्ट्रीय ही नहीं, मानवीय परिवेश में सोचते हैं। उनका दृष्टिकोण उदार है और कार्यक्रम व्यापक है। विश्वस्तर पर हो रहे मानवीय मूल्यों के ह्रास से उनके मन में एक बेचैनी जन्म ले चुकी है। अपनी बेचैनी को स्वर देते हुए आचार्यश्री ने कहा–'भीड़भाड़ में हमारी अधिक अभिरुचि नहीं है। हम नहीं चाहते कि हमारा नाम हो, पर काम करने की तड़प सदा रहती है। हमारे धर्मसंघ में जो काम हो रहा है, उसकी जानकारी पाकर कल एक पत्रकार आया। उसने हमारे कार्यक्रमों, साहित्य, कला, साधना, सेवा आदि के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे। हमने संक्षेप में सारी बातें बताईं। यहां से लौटने से पूर्व वह बोला–'आप इतना काम कर रहे हैं और जनता को ज्ञात ही नहीं है।' मैंने कहा–'फूल का काम खुशबू देना है। उसे फैलाने का काम हवा का है। हम अपना काम कर रहे हैं। उसे जनता तक पहुंचाने का काम आप लोगों का है। हम इस काम में उलझ गए तो अपना मौलिक काम नहीं कर पाएंगे।'

राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में बोलते हुए आचार्यवर ने कहा–'आज राष्ट्र समस्या से संकुल है। प्रधानमंत्री राष्ट्र के कण-कण को जानते होंगे। हम भी जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारी दृष्टि में समस्याओं का उत्स राष्ट्रीय नहीं, मानवीय है। इनका समाधान संकीर्ण दायरे से नहीं, व्यापक दायरे से उभरेगा। व्यापक दृष्टि का निर्माण करने के लिए हमें अपने दृष्टिकोण को भी मानवीय बनाना होगा। कम्यूनिस्ट हो या कांग्रेसी, हिन्दू हो या मुसलमान, सिख हो या जैन, संकीर्ण दृष्टि से समस्या का समाधान नहीं होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारी सोच की मूलभूत बुनियाद मानवीय हो।'

बीकानेर में हुए मिलन की चर्चा करते हुए आचार्यश्री ने कहा–'उस समय आप इस पद पर नहीं थे, इसकी पूर्व भूमिका में थे।' यह बात सुन प्रधानमंत्री खुलकर हंसे और वातावरण में मुक्त हास बिखर गया। आचार्यश्री बोले–'बीकानेर में आप हमारे कार्यक्रम में आए थे। राजस्थान सरकार ने आपके आने का लाभ उठाकर उस दिन पंचायत के प्रधानों का सम्मेलन बुलाया था। उसी दिन अणुव्रत का प्रथम पुरस्कार आपने अपने हाथों से दिया था। उस दिन जनता बहुत थी। इसलिए हमारी चर्चा भीतर के एक छोटे-से कुटीर में हुई थी। हमारी उस चर्चा का सारांश यह था कि धर्म या अध्यात्म के लोग देश की समस्या को समाधान दे सकें, यह संभव नहीं है। इसी प्रकार राजनीति के लोग समाधान खोजने का दावा करें, वह भी ठीक नहीं है। समाधान निकलेगा दोनों के मेल से। व्यवस्था-सुधार का दायित्व सरकार संभाले और हृदय-परिवर्तन का काम धर्म करे। जब तक दोनों का योग नहीं होगा, समाधान नहीं होगा। लगता है, वह चिंतन काल के चक्र में उलझ गया। इसीलिए इस दिशा में अब तक कोई काम नहीं हो सका।'

समस्याओं के समाधान में भागीदारी

प्रधानमंत्री राजीव गांधी 'प्रधानमंत्री' के रूप में आचार्यश्री से पहली बार मिल रहे थे। उनका यह मिलन औपचारिक नहीं, उद्देश्यपूर्ण मिलन था। इससे पहले भारत के अनेक प्रधानमंत्री–पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं श्री मोरारजी देसाई भी समय-समय पर आचार्यश्री से विचार-विमर्श करते रहे थे। उसी शृंखला में वर्तमान प्रधानमंत्री का मिलन-प्रसंग था। इस संबंध में अपनी बात आगे बढ़ाते हुए आचार्यश्री ने कहा–'हमारा मिलन किसी धार्मिक या राजनैतिक दृष्टि से नहीं, मानवीय दृष्टि से है। हम इसे संपूर्ण मानवजाति के लिए सार्थक और उपयोगी बनाना चाहते हैं। दूसरी बात, मानवीय दृष्टि से काम करने वालों को सब बातों से ऊपर उठना होगा। उन्हें वर्ग, पार्टी आदि से भी ऊपर उठकर काम करना होगा। आज हमारे देश के प्रधानमंत्री युवा हैं। इनके सामने ढेरों समस्याएं हैं, किंतु किसी समस्या का बोझ इनके सिर पर नहीं है, वह बड़ी बात है।

इनके नानाजी पंडित नेहरू भी राष्ट्र की अनेक समस्याओं से घिरे हुए थे। जिस समय हम कलकत्ता यात्रा पूरी कर दिल्ली आए, पंडितजी अस्वस्थ थे। हमारे आने का संवाद उन तक पहुंचा। उन्होंने मिलना चाहा। हम प्रधानमंत्री के निवास-स्थान पर गए। बातचीत के दौरान अनुभव हुआ कि उनके मन पर बोझ है। मैंने कहा–'पंडितजी! इस समय आपके सामने बहुत समस्याएं हैं। संकट के इस समय में आप स्वयं को अकेला न मानें। हम सब आपके साथ हैं।' यह बात सुनकर वे उत्साह से भर गए और बोले–'साधुवाद-साधुवाद।' हमने पाया कि इस छोटी-सी मुलाकात से उन्हें बहुत राहत मिली।'

लगभग तीन दशक पहले पंडित नेहरू से आचार्यश्री ने जो बात कही थी, वही बात प्रधानमंत्री राजीव गांधी के सामने प्रस्तुत करते हुए आचार्यवर ने कहा–'आज जितनी समस्याएं हैं, मानवीय दृष्टि से उनका समाधान खोजने में हम आपके साथ हैं। हमारा पूरा धर्मसंघ चरित्रनिर्माण के काम में संलग्न है। आप इसका उपयोग करें। हम लोग तो अकिंचन हैं। न हमारे कोई मठ है, न मंदिर है। अभी हम जिस मकान में रह रहे हैं, वह भी अणुव्रत का है। इजाजत लेकर यहां ठहरे हैं और जाएंगे तब इसे संभलाकर जाएंगे।'

आचार्यवर के इन शब्दों को सुन प्रधानमंत्री सहित सभी लोग हंसी की लहर पर सवार हो गए। आचार्यश्री ने तेरापंथ धर्मसंघ का परिचय दिया। साधु-साध्वियों की अनुशासननिष्ठा का उल्लेख करते हुए उन्होंने आगे कहा–'आज पुत्र पिता के अनुशासन में नहीं रहता। छोटा भाई बड़े भाई की बात नहीं मानता। शायद पत्नी भी पति की बात मानने के लिए राजी नहीं है। ऐसे युग में भी हमारे सात सौ साधु-साध्वियां इतने समर्पित और विनीत हैं कि हम कोई भी काम आसानी से कर सकते हैं।' इस बात पर भी एक बार फिर सभागार में मुक्त हास बिखर गया।

साधु-साध्वियों की फौज सौंपने के लिए

राष्ट्र की चेतना को जगाने के लिए देश के राजनेताओं का जागृत होना जरूरी है। राजनेताओं की सुषुप्ति देश को सैकड़ों साल पीछे धकेल सकती है। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू स्वतंत्रता की लड़ाई के जागरूक

योद्धा थे। वे राष्ट्रीय धारा से पूरी तरह जुड़े हुए थे, किंतु धर्म और अध्यात्म की चर्चा में उनको कोई रस नहीं था। जीवन के आखिरी दशक में उन्होंने एक मोड़ लिया। उस मोड़ का श्रेय मिलता है आचार्यश्री को और उसमें निमित्त बने राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद। यह सब कैसे घटित हुआ? इस संबंध में जानकारी देते हुए आचार्यश्री ने कहा–

'सन् 1950 के आसपास की बात है। उन दिनों हम दिल्ली में थे। अणुव्रत का प्रथम वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में हो चुका था। अणुव्रत की आवाज देश की सीमाओं को पार कर बाहर तक पहुंच गई थी। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के साथ हमारा संपर्क पहले से था। उन्होंने अणुव्रत की बात सुनी और उसका समर्थन भी किया। बातचीत के मध्य वे बोले–'आप पंडितजी से मिले या नहीं?' मैंने कहा–'उनका और हमारा क्या मेल? हम धर्म के व्यक्ति हैं और पंडितजी की धर्म में कोई अभिरुचि नहीं है।' राजेन्द्र बाबू बोले–'आपका कहना ठीक है, पर आप उनसे जरूर मिलें। इससे अणुव्रत को बल मिलेगा।' मैंने कहा–'उनके साथ हमारा परिचय नहीं है। आप माध्यम बनें तो संपर्क हो सकता है।' राजेन्द्र बाबू ने माध्यम बनना स्वीकार कर लिया। उन्होंने नेहरूजी को पत्र लिखकर हमसे मिलने की प्रेरणा दी। नेहरूजी ने राजेन्द्र बाबू को दिए पत्र के उत्तर में लिखा–'आपकी बात मुझे पसंद आई। आचार्यश्री के कार्यक्रम में मेरी दिलचस्पी है, पर मैं बहुत व्यस्त हूं। इसलिए कहीं जा नहीं सकूंगा। आचार्यजी यहां आ जाए तो मुझे बड़ी खुशी होगी।'

राजेन्द्र बाबू ने पंडितजी का पत्र हमारे पास पहुंचा दिया। हम पंडितजी की कोठी पर गए। वहां वे हमारे साथ-साथ पैदल चले। जब हम बात करने के लिए बैठे तो उन्होंने कुर्सी पर बैठने से इंकार कर दिया और वे नीचे बैठ गए। जैसे कि आज राजीवजी ने किया। इतिहास स्वयं को दोहराता है, यह बात आज चरितार्थ हो गई।'

आचार्यवर ने पंडित नेहरू के साथ हुई प्रारंभिक बातचीत का कुछ अंश सुनाते हुए कहा–'पंडितजी को यह आशंका थी कि हम उनसे सुविधाओं की मांग करेंगे। इसी आशंका के आधार पर उन्होंने पूछा–'कहिए, आपको

क्या चाहिए?' मैंने कहा–'हमें कुछ नहीं चाहिए।' 'फिर आपके यहां आने का क्या उद्देश्य है?' पंडितजी के इस प्रश्न पर मैंने कहा–'हमारे पास पांच सौ समर्पित साधु-साध्वियां हैं। देश में हो रहे नैतिक पतन को रोकने के लिए हमने एक आंदोलन चलाया है। उस आंदोलन के तहत काम करने वाले साधु-साध्वियों की फौज आपको सौंपने के लिए हम यहां आए हैं।' यह बात सुन पंडितजी विस्मित हो गए। उन्होंने उसी समय नन्दाजी को बुलाकर उनको निर्देश देकर कहा–'ये आपके संपर्क में रहेंगे। इनके माध्यम से मुझे आपके कार्यक्रमों की जानकारी मिलती रहेगी।' तब से अब तक हम अणुव्रत के माध्यम से राष्ट्रीय चरित्र निर्माण का काम करते आ रहे हैं। राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक इस दिशा में जागरूक रहे तो चरित्र का संकट अपने आप दूर हो सकता है।'

मानवता को बचाना जरूरी

भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी अवस्था से युवा हैं, पर उनकी सौम्यता और शालीनता में वैचारिक परिपक्वता की झलक मिलती है। तीन साल के प्रशासनिक अनुभवों ने उनको अपनी उम्र से बहुत आगे पहुंचा दिया। फिर भी उनकी स्फुरणा और कर्मठता उनके युवा होने की जीवंत पहचान है। अणुव्रत भवन में समवेत भाई-बहनों को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा–'आज मुझे आचार्यजी से मिलने और बात करने का एक अवसर मिला है। इसकी मुझे बहुत खुशी है। इससे पहले मैं बीकानेर में आपसे मिला था। उस समय जो बात हुई थी, मैं आज भी उसी रास्ते पर चल रहा हूं। अभी आपने समस्याओं की चर्चा की। यद्यपि देश में समस्याएं बहुत हैं, किंतु मेरे दिमाग पर उनका बोझ नहीं है। बोझ है तो केवल एक समस्या का है। वह समस्या है–भारत की असली और अंदरूनी शक्ति कमजोर हो रही है। वह शक्ति है धार्मिकता की। वह ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य को अपने उसूलों से, सिद्धांतों से हटने नहीं देती है। आज भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में सिद्धांतवादिता का स्थान अवसरवादिता ले रही है। इस मौकापरस्ती से मानवता को बचाना जरूरी है। हम सिद्धांतों पर बहस ही करते रहें तो कुछ नहीं होगा। हमें उन सिद्धांतों को अमलीजामा पहनाना है और देश को पुनः धार्मिकता के रास्ते पर लाना है। अन्यथा सिद्धांतों पर

अडिग रहकर हजारों वर्षों में भारत ने जो पहचान बनाई है, वह बनी-बनाई पहचान उसूलों से खिसकते ही खत्म हो जाएगी।'

भारत से रोशनी मिलती रही है

भारत की आध्यात्मिक संपदा से अभिभूत होकर प्रधानमंत्री ने आगे कहा–'इतिहास साक्षी है, भारत से हर समय एक रोशनी मिलती रही है। यहां से नए विचार और नई भावनाएं दुनियाभर में पहुंची हैं। दूसरी जगह से ऐसी आवाज उठती ही नहीं, यह बात नहीं है, पर भारत में जितना काम हुआ है, कहीं भी नहीं हुआ। आज भी भारत से वही आवाज उठे और पूरे विश्व में फैले, यह आवश्यकता है। महात्मा गांधी ने इस दिशा में प्रयत्न किया था। पंडितजी ने भी उनका अनुसरण किया था। हमारी विदेशनीति भी मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर टिकी हुई है। इस दृष्टि के बिना न शांति की स्थापना हो सकती है और न विकास हो सकता है।'

आर्थिक विकास ही विकास नहीं है

विकास का मानदंड निर्धारित करना भी एक जोखिमभरा काम है। यह काम प्रबुद्धचेता व्यक्तियों के द्वारा ही हो सकता है। अन्यथा कुछ ऐसे मानक स्थापित हो जाते हैं, जो समूची मानवता को ही निष्प्राण बना देते हैं। इस बिंदु पर ध्यान केंद्रित करके प्रधानमंत्री ने कहा–'आज विकास की बात सामने आते ही सबकी दृष्टि आर्थिक विकास पर जाकर टिकती है। देश में आर्थिक विकास हो जाएगा और मानवता पीछे छूट जाएगी, नैतिक मूल्यों की ओर ध्यान नहीं जाएगा तो देश रसातल में चला जाएगा। आर्थिक और मानवीय विकास साथ-साथ नहीं चले तो टेक्नोलॉजी और साइन्स हमें डुबो देंगे। टेक्नोलॉजी और साइन्स का विकास मानवता के हित में कैसे हो? इस बात पर विचार करना जरूरी है। यह तभी संभव है, जब धर्म और विज्ञान के बीच संतुलन हो। सरकार साधन दे सकती है, संस्थान दे सकती है, पर संतुलन कायम नहीं कर सकती। यह काम धार्मिक लोगों का है। वे इसके प्रति सजग रहें तो देश को दिशा मिल सकती है। आचार्यजी संतुलन बनाने का काम कर रहे हैं, इस बात की प्रसन्नता है। आज मुझे जो मौका मिला है उसके लिए मैं बहुत-बहुत आभारी रहूंगा।'

लगभग पचीस मिनट तक चला यह कार्यक्रम इतना शांत, भव्य और हृदयग्राही था कि एक क्षण के लिए भी मन इधर-उधर नहीं गया। सभागार में उपस्थित सभी लोग चित्रलिखित-से हो रहे थे। वे कभी आचार्यश्री की ओर देख रहे थे और कभी प्रधानमंत्री की ओर। प्रधानमंत्री के विचारों में राजनीति का रंग दिखाई नहीं दिया और आचार्यश्री के विचारों में सांप्रदायिकता का दर्शन नहीं हुआ। मानवीय संवेदन से ओतःप्रोत चिंतन के वे कण पूरे विश्व में बिखर जाएं तो मानव जाति के इतिहास में नया अध्याय खुल सकता है।

इस प्रभावी कार्यक्रम के बाद आचार्यवर, प्रधानमंत्री के साथ भीतरी कक्ष में पधार गए। वहां लगभग पैंतालीस मिनट तक दो महान व्यक्तियों में राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और मानवीय मसलों पर गंभीर मंत्रणा हुई। वह मंत्रणा इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज है। उसके निष्कर्षों से जो ज्योति मिलेगी, वह आने वाले कई युगों तक संसार का पथ आलोकित करती रहेगी, यह जन-जन का विश्वास है।

10. मानवीय समस्याओं पर सीधा संवाद

अध्यापक और विद्यार्थी के बीच सीधा संवाद स्थापित न हो तो विद्यार्थी पुस्तकीय शिक्षामात्र पा सकता है। उसे जीने की शिक्षा नहीं मिलती। गुरु और शिष्य के बीच सीधा संवाद न हो तो दर्शन की उलझी हुई गुत्थी सुलझ सकती है, पर व्यक्तित्व को रूपांतरित करने की दिशा नहीं मिल सकती। शास्ता और शासित के बीच सीधा संवाद न हो तो व्यवस्थातंत्र का संचालन हो सकता है, पर आत्मीय भाव का जागरण नहीं हो सकता। मित्रों के बीच सीधा संवाद न हो तो उपचार निभते रहते हैं, पर अंतःकरण नहीं खुल सकते। राजनेता और धर्मनेता के बीच सीधा संवाद न हो तो मानवीय समस्याओं के समाधान का रास्ता पूरी तरह से प्रशस्त नहीं होता। ऐसा ही कुछ सोचकर 5 नवम्बर 1987 को लगभग साढ़े दस बजे अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी और भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने आमने-सामने बैठकर बहुत लम्बी बातचीत की।

अकल्पित, अनियोजित, पर किसी सुनियोजित वार्तालाप से भी अधिक व्यवस्थित और महत्त्वपूर्ण थी वह बातचीत। भारत के भविष्य को संवारने का पवित्र उद्देश्य और निष्काम भाव से मानवता की सेवा करने का संकल्प। गांधीजी के सपनों में भारत की एक छवि उभरी थी। उससे भी कुछ अधिक उजली छविवाला भारत है आचार्यश्री के सपनों में। अपने सपनों का भारत बनाने के लिए उन्होंने तीन व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिए हैं। देश के चारित्रिक विकास की दृष्टि से अणुव्रत आंदोलन, अणुव्रत आचार-संहिता के अनुरूप जीवन को ढालने के लिए अथवा तनावमुक्ति के लिए प्रेक्षाध्यान और राष्ट्र की अधूरी शिक्षानीति को पूर्णता देने तथा विद्यार्थियों को सुसंस्कारी बनाने के लिए जीवन विज्ञान। सामाजिक स्तर पर और भी

अनेक कार्यक्रम हैं, पर मानवीय दृष्टि से उक्त तीनों कार्यक्रम सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की पुनः स्थापना करने वाले हैं। इसी बुनियाद पर आचार्यश्री राष्ट्र की चेतना को जगाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

एक राष्ट्रसंत के मस्तिष्क रूपी कैनवास पर उभरा हुआ राष्ट्रनिर्माण का सपना और एक राष्ट्रनेता की आंखों में तैरता हुआ सपना। कभी-कभी इन सपनों में संक्रमण भी हो जाता है। अवचेतन मन के तल पर घटित होने वाला संक्रमण सहज होता है, किंतु जब उसे चेतना के स्तर पर उतरना होता है तब स्वप्नद्रष्टा व्यक्तियों की विचारयात्रा जरूरी हो जाती है। एक ऐसी ही विचारयात्रा के कुछ बिंब-प्रतिबिंबों को यहां उभारने का प्रयत्न किया जा रहा है।

इतिहास का नया पृष्ठ

अणुव्रत सभागार के भीतरी कक्ष में आचार्यश्री पट्ट पर आसीन थे। युवाचार्यश्री की उपस्थिति स्वाभाविक थी। आचार्यवर के निर्देशानुसार कक्ष में दो साधु और दो साध्वियां भी पहुंच गईं। मुनि मधुकरजी और मुनि महेन्द्रकुमारजी। मैं और साध्वी कल्पलताजी। प्रधानमंत्री अपने एक अंगरक्षक के साथ भीतर आए। कक्ष का द्वार बंद हो गया। प्रधानमंत्री के लिए सोफा बिछा हुआ था। वे सोफे के निकट आए। बिना कुछ बोले दोनों हाथों में सोफा उठा लिया। अंगरक्षक दौड़कर आया तब तक वे उसे कुछ पीछे रख चुके थे। चेहरे पर सहज प्रसन्नता और विनम्रता के भाव तैर रहे थे। एक निश्छल बालक की भांति वे आचार्यश्री के सामने फर्श पर बैठ गए। भारत के प्रधानमंत्री का पुरुषार्थ, कर्तव्यबोध और विवेक–तीनों एक साथ उजागर हो उठे। एक क्षण के लिए भी उनके मन में यह विकल्प नहीं आया कि प्रधानमंत्री के गरिमापूर्ण पद पर रहकर वे सोफा हटाने जैसा काम क्यों करें। आचार्यवर की सन्निधि में प्रधानमंत्री की उपस्थिति ऐसा आभास दे रही थी मानो कोई पिता-पुत्र किसी गंभीर विषय पर मशविरा करने की तैयारी में हों।

कक्ष में पूरी तरह से मौन व्याप्त था। उस मौन को तोड़ते हुए आचार्यश्री बोले–'हमें यहां आए सात महीने हो गए हैं। पहले हमारा चिंतन नवम्बर

तक यहां ठहरने का था। अब तीन महीने का समय बढ़ा दिया।' समय क्यों बढ़ाया गया? प्रधानमंत्री की जिज्ञासा आंखों तक झलकी। वे कुछ बोलें, उससे पहले ही आचार्यवर ने उनकी जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा–'हमारे सामने दो महत्त्वपूर्ण काम हैं। उन्हें लक्ष्य में रखकर हमने अधिक समय तक दिल्ली रहना स्वीकार किया। वे दो काम हैं–

- 'जैन विश्वभारती' को विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त कराने हेतु चल रही कार्यवाही।
- जनवरी-फरवरी तक संभावित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन।

आचार्यश्री की बात सुन प्रधानमंत्री ने पूछा–'यह जैन विश्वभारती कहां है?' आचार्यश्री ने उत्तर दिया–'यह नागौर जिले के लाडनूं कस्बे में है। मेरी जन्मभूमि में है। वहां शिक्षा, साधना, शोध, सेवा, साहित्य आदि की बहुमुखी प्रवृत्तियां चल रही हैं।' प्रधानमंत्री कुछ याद करते हुए-से बोले–'अच्छा, पिछले महीनों राजस्थान के सूखाग्रस्त इलाकों का दौरा करते समय मैं उधर गया था।'

आचार्यश्री का यह दीर्घकालीन दिल्ली-प्रवास एक संयोग हो सकता है, पर ये दो काम सामने नहीं होते तो आचार्यवर चातुर्मास पूरा होने के बाद दिल्ली में नहीं रुकते। आचार्यश्री नहीं रुकते तो प्रधानमंत्री अणुव्रत भवन नहीं आते। ऐसा नहीं होता तो दिल्ली के तेरापंथ समाज या अणुव्रत भवन के इतिहास का एक नया और महत्त्वपूर्ण पृष्ठ अनलिखा ही रह जाता।

अद्‌भुत सामंजस्य

दो प्रकार की जीवनशैली होती है–व्यक्तिगत और सामूहिक। मनुष्य किसी भी शैली से जीए, उसके सामने कुछ समस्याओं का आविर्भाव हो ही जाता है। व्यक्तिगत स्तर की समस्याओं से व्यक्ति अकेला जूझता है। सामूहिक समस्याओं में पूरे समूह की हिस्सेदारी होती है। फिर भी उनके मुकाबले में उसी को खड़ा होना होता है, जो उस समूह का प्रमुख होता है। भारत एक महान राष्ट्र है। वह अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है। प्रधानमंत्री पर पूरे राष्ट्र की जिम्मेदारी है। राष्ट्र की किसी भी समस्या से वे अनजान

नहीं होते। ढेर सारी समस्याएं सिर पर मंडराती रहें और उनका बोझ महसूस न हो, यह व्यक्तित्व का विलक्षण पहलू है। हमारे प्रधानमंत्री अपने देश की समस्याओं के प्रति बेपरवाह नहीं हैं, फिर भी वे निर्भार रहते हैं। यह सबके लिए प्रेरणा है।

प्रधानमंत्री ने अपने अभिभाषण में कहा कि राष्ट्र की समस्याओं का उन पर कोई बोझ नहीं है। इस बात ने आचार्यवर को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने कहा–'मुझे प्रसन्नता है कि आप किसी भी समस्या का बोझ महसूस नहीं करते। एक व्यक्ति, इतनी समस्याएं और उनका वजन महसूस न होना बड़ी बात है। मेरी स्थिति भी लगभग यही है। सात सौ साधु-साध्वियां और लाखों अनुयायियों का संघ है। इतना बड़ा संघ है तो समस्याएं भी हैं, पर कभी बोझ का अनुभव नहीं होता।' आचार्यश्री और प्रधानमंत्री की प्रकृति का यह अद्‌भुत सामंजस्य दोनों की नैसर्गिक निकटता का प्रतीक है।

हम आपको बधाई देना चाहते हैं

पिछले वर्ष नवम्बर महीने में प्रधानमंत्री राजीव गांधी और सोवियत नेता गोर्बाचेव ने परमाणु शस्त्ररहित शांतिपूर्ण विश्वव्यवस्था के लिए दससूत्री घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए। 'दिल्ली घोषणा पत्र' के नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। उसके बारे में देश-विदेश में बहुत अच्छी प्रतिक्रिया हुई। आचार्यश्री ने वार्ता के प्रारंभ में इसी बात को लक्ष्य में रखकर कहा–'प्रधानमंत्रीजी! हम आपको बधाई देना चाहते हैं। आपने बहुत बड़ा काम किया। इससे राष्ट्र का सिर ऊंचा हुआ है।' प्रधानमंत्री इस आकस्मिक बधाई से असमंजस में खो गए। वे बोले–'किस बात की बधाई?' आचार्यवर ने मुस्कराते हुए कहा–'उस 'दिल्ली घोषणा पत्र' के लिए, जिस पर आपने और गोर्बाचेव ने हस्ताक्षर कर विश्वशांति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उस घोषणा पत्र में अहिंसा को सामाजिक जीवन का आधार बनाने तथा अहिंसक विश्व का निर्माण करने का जो संकल्प व्यक्त हुआ है, वह आश्चर्यजनक है। वैसे रूस हमारा मित्र राष्ट्र है, पर साम्यवाद का पुरस्कर्ता होकर भी उसने अहिंसक दृष्टिकोण स्वीकार किया, यह बड़ी बात है।'

प्रधानमंत्री ने इस तथ्य के साथ अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा–'आचार्यजी! वह हमारे रास्ते पर आ गया।' आचार्यवर ने एक दिसम्बर 1987 का अणुव्रत पाक्षिक दिखलाते हुए कहा–'आपके दससूत्री दिल्ली घोषणा पत्र को अच्छी टिप्पणी के साथ 'अणुव्रत' में प्रकाशित किया गया है।' युवाचार्यश्री ने अणुव्रत में प्रकाशित घोषणा पत्र का कुछ अंश पढ़कर सुनाया। प्रधानमंत्री ने अणुव्रत पत्र अपने पास रख लिया। आचार्यवर ने इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा–'ऐसा प्रतीत होता है कि सोवियत नेताओं के चिंतन का क्रम बदल रहा है। हमारे देश में अब तक शराबबंदी नहीं हुई है, पर जहां तक हमने सुना है, रूस में शराब का उपयोग काफी कम होने लगा है। घोषणा पत्र के कई सूत्र वहां क्रियान्वित हो रहे हैं। एक साम्यवादी नेता द्वारा व्यक्त अहिंसा का संकल्प भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। लगता है, आपने उन पर जादू कर दिया।'

निःशस्त्रीकरण के मुद्दे पर रूस को सहमत करना कोई सरल काम नहीं था। इस दृष्टि से युवाचार्यश्री ने कहा–'गांधीजी ने जो नहीं किया, वह आपने कर लिया।' यह बात सुन प्रधानमंत्री ने पूरी विनम्रता के साथ कहा–'मुझे तो मौका मिल गया। काम तो पूरे चालीस वर्ष से हो रहा था।' इस पर आचार्यश्री बोले–'इसके लिए गोर्बाचेव तक भी हमारी बधाई पहुंचा दें।' प्रधानमंत्री ने कहा–'जरूर, मैं उन तक आपकी बधाई पहुंचा दूंगा।'

सेक्युलर शब्द का सही अर्थ

भारत सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। इसका संविधान पूरी सूझबूझ के साथ तैयार हुआ। संविधान में एक शब्द है 'सेक्यूलर'। इसका हिन्दी अनुवाद किया गया है धर्मनिरपेक्ष। आचार्यवर ने इसकी ओर प्रधानमंत्री का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा–'सेक्युलर शब्द का प्रयोग सही अर्थ में नहीं हो रहा है। क्या इस संदर्भ में कोई चिंतन संभव है?'

प्रधानमंत्री यह सुनते ही बोले–'आचार्यजी! आप बहुत ठीक कह रहे हैं। वास्तव में ही यह शब्द भ्रामक है। इसे लेकर मेरा बड़ा झगड़ा हुआ। कुछ समय पहले की बात है। नई शिक्षानीति की रूपरेखा तैयार की गई। मैंने कहा–'इसे पढ़कर सुनाओ।' उसमें सेक्युलर शब्द था। उसका अर्थ

भी धर्मनिरपेक्ष किया गया था। मैंने कहा–'धर्म से निरपेक्ष नीति कौन-सी होगी? जिस नीति से धर्म निकल जाएगा, उसूल निकल जाएंगे, फिर बाकी क्या बचेगा? इस एक बात पर चार घंटे तक बहस चली। बहस के दौरान मैंने कहा–'सेक्युलर' शब्द का अर्थ हम करते हैं धर्मनिरपेक्ष। इसका मतलब यह होगा कि शिक्षानीति में रहे धर्म के उसूलों को निकालकर हम अपने उसूल उसमें डालें। हम कौन होते हैं सिद्धांत बदलने वाले या नए सिद्धांत देने वाले? सरकार को ऐसा कोई 'मारेल राइट' नहीं है। ऐसी हालत में आप धर्म को निकाल देंगे तो फिर रहेगा क्या?' मेरी यह बात सुनकर कुछ साथी बोले–यदि हम सेक्युलर शब्द नहीं रखेंगे तो हंगामा मच जाएगा। इस पर मैं मौन हो गया। आगे मुझे कोई रास्ता नहीं मिला।'

प्रधानमंत्री ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा–'मेरे व्यक्तिगत विचारों का जहां तक प्रश्न है, इस संबंध में पंडितजी के विचारों के साथ उनका मेल नहीं है। वे धर्म को महत्त्व नहीं देते थे। मैं मानता हूं कि धर्म के बिना कुछ चल ही नहीं सकेगा। लेकिन जहां धर्म स्वयं ही विवादास्पद हो जाता है, तब मुश्किलें खड़ी हो जाती हैं। ऐसे लोग भी देश में हैं, जो अच्छा-बुरा कुछ भी कर लेते हैं और मंदिर जाकर धार्मिक बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में धर्म को किस तरह चलाया जा सकता है? इसी बिंदु पर धर्मनिरपेक्षता की बात आड़े आ जाती है।'

प्रधानमंत्री की कठिनाई को समझकर आचार्यश्री ने कहा–'आप सेक्युलर शब्द को मत हटाइए। केवल इसका अर्थ बदल दें। सेक्युलर का अर्थ होना चाहिए संप्रदाय-निरपेक्ष। दूसरे शब्दों में सर्वधर्म सद्भाव। जैन, बौद्ध, सनातन, इस्लाम आदि धर्म नहीं हैं। ये सब संप्रदाय हैं। संप्रदाय समाप्त नहीं होंगे, पर धर्म इन सबसे ऊपर है। मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि हमारा देश धार्मिक रहेगा, किंतु इस पर किसी संप्रदाय-विशेष का वर्चस्व नहीं रहेगा।'

सेक्युलर शब्द की यह व्याख्या प्रधानमंत्री को बहुत अच्छी लगी। वे बोले–'यह ठीक है। इसको नोट कर मुझे दे दीजिए।' उसी समय इस संबंध में लिखित नोट्स की एक कॉपी प्रधानमंत्री को दे दी गई।

धर्म और संप्रदाय में क्या अंतर है? इसे स्पष्ट करने के लिए आचार्यवर ने फल को प्रतीक बनाते हुए कहा–'एक फल में गूदा भी होता है और छिलका भी। खाने के लिए उपयोगी गूदा है, पर उसकी सुरक्षा के लिए छिलका जरूरी है। यही बात धर्म और संप्रदाय की है। धर्म गूदा है और संप्रदाय छिलका है। कठिनाई तब होती है जब संप्रदाय को ही धर्म मान लिया जाता है। सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, मैत्री आदि तत्त्व धर्म हैं। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा आदि सब संप्रदाय के सूचक हैं। किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत आस्था कहीं भी हो, धर्म के सार्वभौम तत्त्व सबके लिए एक समान हैं।'

संप्रदायविहीन धर्म

आचार्यश्री पिछले चार दशकों से अणुव्रत का काम कर रहे हैं। अणुव्रत संप्रदायविहीन धर्म का उदाहरण है। वह कहता है कि उपासना व्यक्तिगत होती है, पर धर्म सार्वभौम है। प्रधानमंत्री को अणुव्रत का दर्शन समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा–'हमने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए एक नैतिक आंदोलन चलाया है। इसके अनुसार एक ईसाई व्यक्ति ईसाई रहता हुआ अणुव्रती बन सकता है। मुसलमान व्यक्ति मुसलमान रहकर अणुव्रती बन सकता है। अणुव्रती बनने के लिए धर्मपरिवर्तन करने की जरूरत नहीं है। अणुव्रती बनने के लिए हमें गुरु मानने की भी जरूरत नहीं है। इसके लिए तो एक ही अपेक्षा है–नैतिक नियमों को अपनाने की तथा अणुव्रत द्वारा दिखाए हुए रास्ते पर चलने की। संप्रदायातीत होने के कारण ही अणुव्रत का सब जगह स्वागत हुआ है। देश में ही नहीं, विदेशों में भी अणुव्रत के प्रति अभिरुचि बढ़ रही है। हवाई विश्वविद्यालय और हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अणुव्रत की चर्चा चल रही है। इस प्रकार बहुत संक्षेप में आपको अणुव्रत की बात बताई है। क्योंकि हमें कुछ अन्य मुद्दों पर भी बात करनी है।'

अणुव्रत हमारे देश का बहुचर्चित आंदोलन है। प्रधानमंत्री भी शायद इससे अपरिचित नहीं हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने कहा–'आप जो बता रहे हैं, मैं सब समझ रहा हूं।' आचार्यवर ने प्रधानमंत्री का ध्यान उस प्रस्तावित विधेयक की ओर भी केंद्रित किया, जिसका संबंध धर्म और राजनीति

के सर्वथा पृथक्करण से है। इस संदर्भ में मुक्त चर्चा करते हुए उन्होंने कहा–'यहां भी धर्म के स्थान पर संप्रदाय शब्द रहे तो कई मुसीबतों से बचाव हो सकता है।'

देश की गरीबी और सरकारी मशीनरी

इस वर्ष भारत अकाल की चपेट में है। कहा जाता है कि यह इस शताब्दी का सबसे भयंकर अकाल है। दूसरी ओर भारत वैसे भी बहुत समृद्ध राष्ट्र नहीं है। देश की गरीबी मिटे या न मिटे, कम-से-कम वह बढ़े नहीं, इस बात की ओर इंगित करते हुए आचार्यश्री ने कहा–'हमारे देश में इतनी गरीबी है, फिर भी अरबों की प्रसाधन-सामग्री का आयात होता है। इसका क्या अर्थ है? दूसरी बात, विवाह-शादियों के अवसर पर इतना अपव्यय क्यों होता है? क्या इन पर नियंत्रण संभव नहीं है?'

प्रधानमंत्री ने इस मुद्दे को काफी गंभीरता से लिया। उन्होंने बहुत ही साफ-साफ शब्दों में कहा–'गरीबी हटाने में सबसे बड़ी बाधा है सरकारी मशीनरी का भारी होना। वह बहुत खर्चा चूस लेती है। इसलिए नीचे तक बहुत कम पहुंच पाता है। यह तो मूल बात है। भ्रष्टाचार की बात तो अलग है। प्रश्न होगा–ऐसा क्यों होता है? करें क्या, सबको शिक्षा ही ऐसी दी गई है। उससे लोग बाबू बन सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते। इस क्रम से सरकार पर दबाव पड़ता है कि अधिक व्यक्तियों को नौकरी दो। अधिक लोगों को नौकरी देने से स्थिति उलझती है। जिस ब्लॉक में एक व्यक्ति की जरूरत हो, वहां चौदह आदमी हो जाएं तो उलझन बढ़ेगी ही।'

प्रधानमंत्री की यह चिंता सकारण है। जब तक ऊपर रहने वाले लोग ऐसा चिंतन नहीं करेंगे, समस्या सुलझेगी नहीं। उच्च स्तर के लोग व्यक्तिगत जीवन में भी सादगी लाएं, इस दृष्टि से आचार्यश्री ने 'चाणक्य' का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा–'हमने सुना है कि चाणक्य छोटी-सी झौंपड़ी में रहता था।' युवाचार्यश्री बोले–'यह कोई सुनी-सुनाई बात नहीं है, ऐतिहासिक घटना है।' आचार्यवर ने कहा–'वर्तमान में जो स्थिति है, उसको मोड़ कैसे दिया जाए, यह सोचने की बात है।' प्रधानमंत्री बोले–'हम इसके लिए कोशिश कर रहे हैं।'

नैतिक शिक्षा पुस्तक से नहीं, प्रयोग से आएगी

प्रधानमंत्री ने देश का नेतृत्व संभालते ही शिक्षानीति को लेकर देशभर में नई बहस की शुरुआत की। एक बार तो ऐसा लगा कि अवश्य ही कोई बड़ा परिवर्तन होगा, पर संभावना के अनुरूप कुछ भी नहीं हुआ। शिक्षानीति के बारे में प्रधानमंत्री से बात करते समय आचार्यश्री ने कहा–'शिक्षा में परिवर्तन का काम हुआ, उससे आपको संतोष है क्या?' प्रधानमंत्री बोले–'मुझे संतोष नहीं है। क्योंकि जो काम मैं करना चाहता था, वह हुआ ही नहीं।' आचार्यश्री ने पूछा–'आप क्या करना चाहते थे? प्रधानमंत्री ने उत्तर दिया–'मैं चाहता था कि शिक्षा के साथ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य जुड़े, किंतु अब तक ऐसा कोई रास्ता नहीं बैठा है।' इस पर आचार्यश्री ने कहा–'इस संदर्भ में श्री नरसिम्हाराव और श्री शिवराज पाटिल के साथ हमारी बात हुई थी। उन्होंने भी यही कहा। मैंने उनसे कहा था कि हम लोग छोटे आदमी हैं, पर शिक्षा के क्षेत्र में असांप्रदायिक दृष्टि से हमारा उपयोग करना चाहें तो हम तैयार हैं। हमारा यह विश्वास है कि नैतिक या आध्यात्मिक शिक्षा पुस्तकों से नहीं, प्रयोग से आएगी। हमने 'जीवन विज्ञान' का एक उपक्रम शुरू किया है। उसके परिणाम भी अच्छे आए हैं।'

प्रश्न हो सकता है कि प्रयोग किसको कराए जाते हैं और उसके क्या परिणाम आते हैं? आचार्यवर ने इन दोनों प्रश्नों को छूते हुए कहा–'अध्यापकों और छात्रों, दोनों को प्रयोग कराए जाते हैं। जिन लोगों ने प्रयोग किया है, उन्होंने बदलाव का भी अनुभव किया। चालीस वर्ष से सिगरेट पीने वाला चेन स्मोकर और तीस वर्ष से शराब का आदी व्यक्ति। अनेक प्रयत्न किए गए, पर सिगरेट और शराब नहीं छूटी। लेकिन कुछ दिनों के प्रयोग से ऐसी सब आदतें छूट गईं। यह बात भी हमने नरसिम्हाराव को बताई। उन्होंने इसमें रुचि ली, पर आपने उन पर इतना अधिक बोझ डाल रखा है कि वे समय नहीं निकाल पाए।'

नवोदय विद्यालयों में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य सिखाने की दृष्टि से यह आवश्यकता अनुभव हुई कि सरकार के एक-दो व्यक्ति बराबर संपर्क में रहें। वे स्वयं जानकारी करें और वहां नियुक्त किए जाने

वाले अध्यापकों को प्रशिक्षण दिलाने की व्यवस्था कर सकें तो इस क्षेत्र में सरकार का काम भी काफी हल्का हो सकता है।

युवाचार्यश्री ने जीवन विज्ञान के प्रयोगों से होने वाले बदलाव की चर्चा करते हुए कहा–'आज के साइन्स की दृष्टि से हमारे प्रत्येक व्यवहार के पीछे रासायनिक स्राव काम करते हैं। जब तक हृदय-परिवर्तन या रासायनिक परिवर्तन की बात नहीं होगी, बदलाव नहीं होगा। क्रोध, अहंकार, उद्दंडता आदि नकारात्मक भाव हैं। करुणा, विनम्रता आदि विधेयात्मक भाव हैं। नकारात्मक भावों को बदलकर विधेयात्मक भावों को कैसे उभारा जा सकता है, इसके लिए कुछ प्रयोग निश्चित हैं। राजस्थान की स्कूलों में ऐसे प्रयोग कराए गए। उनके परिणाम भी आशा से अधिक अच्छे आए।' युवाचार्यश्री के इस कथन पर आचार्यश्री बोले–'ऐसा हुआ तो शिक्षापद्धति अद्भुत हो जाएगी।' प्रधानमंत्री ने आचार्यश्री के साथ अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा–'मैंने प्रारंभ में जो प्वाइंट उठाया था, वह यही है।'

गांधीजी के पदचिह्नों पर

प्रधानमंत्री आधा घंटे के लिए अणुव्रत भवन आए थे। वे पचीस मिनट खुले कार्यक्रम में रहे और पैंतालीस मिनट अंतरंग बातचीत में। सत्तर मिनट के समय में उन्होंने एक बार भी घड़ी पर नजर नहीं टिकाई। इतनी सहजता और सरसता के साथ बात हो रही थी कि निकट बैठकर सुनने वालों को भी काल का बोध नहीं रहा। जो लोग बाहर बैठे थे, वे जरूर बात पूरी होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ आवश्यक विषय अब तक अछूते भी थे। आचार्यश्री ने वार्तालाप के अंतिम दौर में इसी संदर्भ में कहा–'प्रधानमंत्रीजी! आप काफी व्यस्त रहते हैं। हम भी अपने काम में लगे रहते हैं। वैचारिक संपर्क में दीर्घकालीन व्यवधान होने से कुछ करणीय काम नहीं हो पाते हैं। हमारे बीच यह व्यवधान न हो, इसके लिए क्या किया जा सकता है?'

प्रधानमंत्री भी शायद यह अनुभव कर रहे थे कि आचार्यश्री के साथ बैठने से कुछ नए रास्ते खुल सकते हैं। इस बात को ध्यान में रखकर वे बोले–'आचार्यजी! मैं फिर आऊंगा।' प्रधानमंत्री की इस निगर्विता का

अंकन करते हुए आचार्यश्री ने कहा–'आपकी भावना आने की है, पर आपका आना-जाना इतना सरल नहीं है। सिक्योरिटीवालों की भी अपनी कठिनाई है। वैसे हम भी वहां आ सकते हैं, पर उसमें एक ही मुश्किल है कि हम वाहन का प्रयोग नहीं करते। इसलिए जब चाहें तब नहीं आ सकते।'

इस बात से प्रधानमंत्री की आंखों में आश्चर्य का भाव-सा उभरा। शायद वे कहना चाहता थे कि जैन मुनि वाहन का उपयोग भी करते हैं। उनकी आकृति को पढ़ते ही आचार्यश्री बोले–'कुछ जैन मुनि ऐसा करने लगे हैं। वे साधु के आचार को छोड़कर कार, टैक्सी, प्लेन आदि का उपयोग करते हैं, जबकि जैन मुनि के लिए जीवनभर पदयात्रा का विधान है। ऐसे साधुओं से जैनत्व की छवि धूमिल होती है।'

संपर्क सूत्र की बात को आगे बढ़ाते हुए आचार्यश्री ने कहा–'आप किसी एक व्यक्ति को नियुक्त कर दें, जो आपसे मिलता रहे और हमसे भी मिलता रहे। वह हमारे विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाता रहे तो व्यवधान कम हो सकता है। कभी विशेष अपेक्षा हुई तो हम महाप्रज्ञजी को वहां भेज सकते हैं।' प्रधानमंत्रीजी एक क्षण चिंतन कर बोले–'भाटियाजी (रघुनन्दनलाल भाटिया, कांग्रेस महासचिव) यह काम कर सकते हैं। वे शायद आपसे परिचित भी हैं। बागड़ोदियाजी (सन्तोष बागड़ोदिया, संसद सदस्य) भी ठीक हैं। वैसे मेरे दिमाग पर एक ही बात का बोझ है, जिसकी चर्चा मैंने पहले ही कर दी।' प्रधानमंत्री के इस कथन पर युवाचार्यश्री बोले–'ऐसा लगता है कि आप गांधीजी के पदचिह्नों पर चल रहे हैं।' गांधीजी से जब पूछा गया कि उनको सबसे बड़ी चिंता किस बात की है तो उन्होंने कहा–हिन्दुस्तान से करुणा का स्रोत सूख रहा है। यह सबसे बड़ी चिंता है।' करुणा का भाव अध्यात्म के बिना नहीं टिक सकता। आचार्यश्री ने संप्रदाय-निरपेक्ष रहकर आध्यात्मिक दृष्टि से जितना काम किया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।'

व्यक्तियों का चयन करने में सावधानी

वार्तालाप की समापन किश्त में आचार्यश्री ने पुनः मानवीय मूल्यों का उल्लेख करते हुए कहा–'हमें अपना संप्रदाय बढ़ाने की चिंता नहीं है। हम एक ही बात चाहते हैं कि देश में और विश्व में मानवता अवश्य बढ़े।

मानवता के अभाव में ही अलगाववादी मनोवृत्तियां पनपती हैं। इससे हर काम में अवरोध आता है। हम यह सोच रहें हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर कोई ऐसी समिति बने, जो गैर राजनैतिक रूप से राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान खोजे। देश के जागरूक लोग सारा काम सरकार या प्रधानमंत्री पर ही क्यों छोड़े? उनका भी तो कुछ दायित्व है। वे समन्वित प्रयास करें और अहम समस्याओं के संदर्भ में सामूहिक राय से कुछ काम करें।' यह बात प्रधानमंत्री को बहुत अच्छी लगी, पर उन्हें इसमें कुछ खतरा भी दिखाई दिया। इस दृष्टि से वे बोले–'समिति बने, पर उसमें व्यक्तियों का चयन बहुत ध्यान से करना होगा। अन्यथा कठिनाई पैदा हो सकती है।'

नए क्षितिज खुलने की प्रतीक्षा

दूसरी बार मिलने की मधुर संभावना के साथ प्रधानमंत्री ने आचार्यश्री को बद्धांजलि प्रणाम किया और प्रसन्नमना होकर कक्ष से बाहर आए। वहां सांसद केयूरभूषण और संतोषजी बागड़ोदिया खड़े थे। उनकी ओर देखकर प्रधानमंत्री बोले–'संतोषजी! आचार्यश्री के विचार हम तक पहुंचाते रहना।' बाहर खड़े सब लोगों को अभिवादन करते हुए प्रधानमंत्री एक गरिमापूर्ण प्रभाव छोड़कर वहां से विदा हो गए। उनका यह मिलन कितना श्रद्धासिक्त और आत्मीयतापूर्ण था, प्रत्यक्षदर्शी ही अनुभव कर सकते हैं। बातचीत के दौरान अणुव्रत पुरस्कार, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन और साध्वियों के साथ श्रीमती सोनिया गांधी के मिलन को लेकर संक्षिप्त-सी चर्चा हुई। वैसे पूरा वार्तालाप मानवीय समस्याओं पर आधारित था। उसमें किसी छोटे विषय का स्पर्श ही नहीं हुआ। वार्तालाप के अंत में आचार्यश्री और प्रधानमंत्री– दोनों के चेहरे पर सहज सात्त्विक संतोष की झलक थी। दो महान व्यक्तियों का यह मिलन देश के आध्यात्मिक विकास के नए क्षितिज उन्मुक्त करेगा। इस मंगलभावना ने दूरस्थ और निकटस्थ सभी लोगों को अतिरिक्त आनंद से भर दिया।

11. अध्यात्म किसी की बपौती नहीं

सन् 1981 की बात है। मार्च का महीना अभी तक पूरा नहीं हुआ, फिर भी बसंत की सुषमा गर्मी से प्रभावित होने लग गई। उन दिनों आचार्यश्री का प्रवास जयपुर की पुलिस अकादमी के सामने संजय कॉलोनी में था। कॉलोनी शहर से थोड़ी दूर है, फिर भी सुबह से शाम तक लोगों का आना-जाना होता रहता था। आगंतुक लोगों में वे ही व्यक्ति नहीं होते, जो आचार्यश्री के भक्त, परिचित या धार्मिक प्रवृत्ति के थे, किंतु सब प्रकार की रुचि रखने वाले सब वर्गों के व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार आचार्यश्री के सान्निध्य में पहुंचते रहते।

आचार्यश्री दिन में तीन-चार बार प्रवचन करते। जयाचार्य के साहित्य का काम करते। समय-समय पर साधु-साध्वियों को प्रशिक्षण देते। ध्यान शिविर में जाते और अपनी चर्या के अन्य सभी आवश्यक कार्यों का संपादन करते। इन सब कार्यों के साथ वे आगंतुक जिज्ञासुओं को पर्याप्त समय देते।

28 मार्च को प्रातः आचार्यश्री साध्वियों से अर्हत् वंदना का संगान करवा रहे थे और लय की एकरूपता की दृष्टि से कुछ आवश्यक निर्देश दे रहे थे। घड़ी ने नौ बजाए और देखते-ही-देखते दस मिनट बीत गए। सहसा एक कार सामने आकर रुकी और कुछ अपरिचित व्यक्ति आचार्यश्री के सामने आकर खड़े हो गए।

आगंतुकों में दंपतियों के दो युगल थे। पहले युगल में थे नीदरलैंड (हॉलैंड) के राजदूत श्री एच. लियोपॉल्ड और उनकी धर्मपत्नी। दूसरे युगल में थे राजस्थान यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर यूनिथान और उनकी धर्मपत्नी। उन्होंने कक्ष में प्रवेश करते ही विनत भाव से आचार्यश्री का

अभिवादन किया। राजदूत महोदय और उनकी धर्मपत्नी हिन्दी नहीं समझते थे। प्रोफेसर यूनिथान भारतीय थे, इसलिए वे हिन्दीभाषी थे। उनकी धर्मपत्नी हॉलैंड की होने पर भी अच्छी तरह से हिन्दी समझ रही थी और बोल रही थी।

राजस्थान के जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री सोहनराजजी कोठारी ने राजदूत महोदय का परिचय आचार्यश्री से कराया तथा आचार्यश्री, तेरापंथ धर्मसंघ, मुनि जीवन, अणुव्रत आदि के संबंध में आगंतुकों को जानकारी दी। राजदूत महोदय ने आचार्यश्री का परिचय पाकर कहा– 'आपके दर्शन पाकर मैं अपने आपको सम्मानित अनुभव कर रहा हूं।' वे लोग लगभग पचास मिनट तक वहां ठहरे। इस अवधि में उन्होंने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाया, जैन दर्शन के बारे में विस्तार से समझा और साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं का निरीक्षण किया। आचार्यश्री और राजदूत महोदय के मध्य हुए वार्तालाप का मुख्य अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है–

आचार्यश्री–आपको यहां आने की प्रेरणा किससे मिली?

राजदूत–(प्रोफेसर यूनिथान की ओर संकेत करते हुए) जयपुर यूनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं प्रोफेसर यूनिथान। इन्होंने मुझे कहा कि यहां आचार्य तुलसीजी आए हुए हैं और मैं आपसे मिलूं।

आचार्यश्री–इससे पहले आपने जैन मुनियों को देखा है? उनके बारे में कुछ सुना है?

राजदूत–बाईस साल पहले मैं जयपुर आया था, तब कुछ जैन मुनियों को देखा था। उसके बाद मैं माउन्ट आबू, रणकपुर आदि जैन तीर्थस्थानों में गया था। अभी मैं श्रवणबेलगोल जाकर आया हूं। इन तीर्थस्थानों में जाने से मुझे थोड़ी-थोड़ी जानकारी प्राप्त होती रही है।

आचार्यश्री–एक राजदूत की हैसियत से भी आपके लिए भारतीय संस्कृति और धर्मों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

राजदूत–आचार्यश्री! वर्तमान विश्वस्थिति के बारे में आपकी क्या विचारधारा है?

आचार्यश्री–विश्व की स्थिति में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। उसे लेकर चिंतित होने की जरूरत नहीं है, पर उस दृष्टि से जागरूक अवश्य करना है। अध्यात्म पर भौतिकवाद हावी न हो जाए, इसके लिए कुछ प्रयत्न भी करना है। आज जो स्थिति है, वह संतोषप्रद नहीं है। भौतिकता का प्रभाव बढ़ रहा है और आध्यात्मिक अभिरुचि क्षीण हो रही है। सारा संसार कभी आध्यात्मिक हो जाएगा, यह चिंतन अतिवाद का सूचक है, पर अध्यात्म और भौतिकवाद के बीच का संतुलन-सेतु ही टूट जाए, यह स्थिति अच्छी नहीं हो सकती। आज संसार में जितना दुःख और अशांति है, उसका मूलभूत कारण भौतिकताप्रधान दृष्टिकोण है। सुख और शांति का एकमात्र रास्ता अध्यात्म है। अध्यात्म जीवन के यथार्थ दर्शन को प्रस्तुति देता है और वहां उपस्थित होने वाले अवरोधों को समाप्त कर चिंतन को प्रशस्त बना देता है।

राजदूत पत्नी–आप कभी हिन्दुस्तान से बाहर भी गए हैं?

आचार्यश्री–नहीं, हम बाहर नहीं गए और न हमारे मन में ऐसा कोई आकर्षण ही है कि हम भारत से बाहर जाकर काम करें। क्योंकि काम करने वालों के लिए यहां भी काम बहुत है। हम बाहर नहीं गए, इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम वहां की स्थितियों से अवगत नहीं हैं। भारत की यात्रा पर आने वाले विदेशी हमसे मिलते रहते हैं। वहां की स्थिति का अध्ययन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि आज एक उल्टा प्रवाह चल रहा है। पश्चिम के लोग सदा से भारत के प्रति आशावान रहे हैं। वे यहां से अध्यात्म की प्रेरणा पाते रहे हैं। मानसिक संत्रास और घुटन की स्थिति में उनको भारत की धरती पर सुख और शांति के आसार दिखाई देते हैं, किंतु आज के भारतीय शांति की खोज में पश्चिम की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। यह दृष्टिकोण का अंतर है।

राजदूत–वहां के लोगों में अब भी भारत के प्रति आकर्षण है।

आचार्यश्री–मेरा विश्वास है कि आज भी भारत में ऐसे व्यक्ति हैं, जो अध्यात्म की ऊंचाई तक पहुंचे हुए हैं। वे विश्व को शांति का संदेश दे सकते हैं।

राजदूत–हमारे देश के बहुत लोग मानते हैं कि भारत से अध्यात्म का जो संदेश मिलेगा, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आचार्यश्री–पश्चिम में भौतिकता का जो प्रवाह है, वह टी.वी., रेडियो आदि आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से भारत में भी पहुंच गया। पश्चिम के लोग जिस स्थिति से अघा रहे हैं, भारतीय उस ओर खिंचे जा रहे हैं। यह अच्छी स्थिति नहीं है। भारत की आध्यात्मिक परंपरा और उन्नत संस्कृति से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

राजदूत–अब तो हमारे सामने जो कुछ है, यह मिलाजुला रूप है। भारत के अध्यात्म में भौतिकता आ रही है और पश्चिम के भौतिकवाद पर अध्यात्म का प्रभाव बढ़ रहा है।

आचार्यश्री–अध्यात्म किसी की बपौती तो है नहीं, जो देश-विदेश की सीमाओं में बंधकर रह जाए। यह देश और काल से परे एक अखंड तत्त्व है। यह किसी भी समय कहीं भी हो सकता है। विगत शताब्दियों, सहस्राब्दियों से यह भारत की थाती बनकर रहा है। हिन्दुस्तान के पास अपनी लम्बी परंपरा है। आज भी यहां कुछ व्यक्ति ऐसे मिल सकते हैं, जो प्राचीन परंपरा और संस्कृति के वाहक हैं। इस दृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि भारत अध्यात्म प्रधान देश है।

राजदूत–जैनधर्म की प्रमुख बातें क्या हैं?

आचार्यश्री–जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक आत्मा की स्वतंत्र सत्ता है। वह ईश्वर का अंश नहीं है। उसका अस्तित्व और विकास किसी परम सत्ता पर निर्भर नहीं है। हर आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व है। वह थी, है और रहेगी। उसका जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, सुख-दुःख सब उसके द्वारा कृत कर्मों की निष्पत्तियां हैं। वह जैसा कर्म करती है, वैसा ही फल उसे भोगना होता है। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उसे अपने कर्मों का फल भोगना होगा।

दूसरी बात यह है कि इस सृष्टि का कोई कर्ता नहीं है। संसार सदा था और सदा रहेगा। इसका सेल्फ एग्जिस्टेंस है। ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानने से कुछ नई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं, जिनका कोई समाधान

नहीं मिलता। सृष्टि का कर्ता मानने से इसकी आदि स्वीकार करनी होगी, जबकि इसका अस्तित्व अनादि काल से है।

संसार में धर्म का तत्त्व भी शाश्वत है। वर्तमान जैनधर्म का जो रूप है, वह चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। भगवान महावीर ने दो प्रकार की साधना बताई–महाव्रत साधना और अणुव्रत साधना। महाव्रत की साधना करने वाले घर, परिवार छोड़ संसार से विरक्त हो मुनि बन जाते हैं। वे पांच महाव्रतों का पालन करते हैं और एक विशिष्ट चर्यावाला जीवन जीते हैं। अणुव्रत की साधना उन लोगों के लिए है, जो घर में रहते हुए धार्मिक जीवन जीना चाहते हैं। पांच अणुव्रतों की साधना करने वाले लोग श्रावक कहलाते हैं। यह मार्ग सीधा है, पर है लम्बा। वह मार्ग कठोर है, पर छोटा है। अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार इन मार्गों को स्वीकार किया जाता है।

जैन साधना के संबंध में भ्रांति है कि जैनधर्म शरीर को कष्ट देने में धर्म मानता है, पर मैं कहना चाहता हूं कि शरीर के साथ हमारी दुश्मनी नहीं है। यह तो हमारी साधना में सहयोगी बनता है, इसलिए इसकी सार-संभाल की जाती है।

राजदूत–आपने बताया कि व्यक्ति को अपने कर्मों का फल अगले जन्म में भी भोगना पड़ता है। इसका मतलब आदमी का पुनर्जन्म होता है?

आचार्यश्री–हां, पुनर्जन्म निश्चित रूप से होता है, पर यह जरूरी नहीं कि आदमी अगले जन्म में आदमी ही हो। वह मनुष्य हो सकता है, पशु हो सकता है, पक्षी हो सकता है, अन्य कुछ भी हो सकता है। जन्म और मृत्यु के इस प्रवाह में बहते-बहते एक समय ऐसा भी आ सकता है, जब पुनर्जन्म की परंपरा समाप्त हो जाए। निर्वाण, मुक्ति या शाश्वत आनंद उपलब्ध हो जाए। उसी के लिए हम साधना कर रहे हैं। आप भी उसी आनंद की खोज में हैं। इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसे शाश्वत सुख पाने की चाह न हो।

राजदूत–मैंने सुना है कि जैनधर्म मानने वाले कुछ लोग मूर्तिपूजक हैं और कुछ अमूर्तिपूजक। आप उनमें से कौन हैं?

आचार्यश्री–हम अमूर्तिपूजक हैं।

राजदूत–(आश्चर्य व्यक्त करते हुए) क्या आप मूर्तियों को नहीं मानते? उनमें कितना आर्ट भरा पड़ा है।

आचार्यश्री–हम मूर्ति को नहीं मानते, यह बात नहीं है। हम मूर्ति को मूर्ति मानते हैं। उसमें आर्ट है, इतिहास है, संस्कृति है और आलंबन रूप में वह एकाग्रता का निमित्त भी बन सकती है, पर जिस रूप में मूर्तियों की पूजा चल रही है, उसमें हमारा विश्वास नहीं है। क्योंकि पूज्य वही हो सकता है, जिसमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र हो।

राजदूत–अच्छा, अब मैं समझ गया कि मूर्ति के अस्तित्व में आपकी कोई असहमति नहीं है, पर उसकी पूजा-उपासना में आपका विश्वास नहीं है।

आचार्यश्री–हां, आप ठीक समझे हैं।

राजदूत–आपका यह चिंतन मुझे भी ठीक लगता है।

घड़ी में दस बजने वाले थे। आचार्यश्री को प्रवचन करने के लिए प्रवचन पंडाल में पहुंचना था और राजदूत महोदय को किसी अन्य कार्यक्रम में। वार्तालाप का अंतिम बिंदु आचार्यश्री के अग्रिम कार्यक्रम की जानकारी के साथ पूरा हुआ। राजदूत महोदय ने कहा–'संभव हुआ तो मैं दिल्ली में भी आपसे मिलूंगा। आपने हमको इतना प्रतिबोध दिया, इसके लिए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद।'

आचार्यश्री–आपने इतनी जिज्ञासाएं कर ज्ञान-चर्चा को आगे बढ़ाया, इस दृष्टि से हम भी आपको साधुवाद देते हैं।

12. संघ व समाज से अपेक्षाएं

प्रश्न : आपके आचार्यकाल के पचास वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। इस संघ के सूत्रधार या आचार्य के रूप में आप कैसा महसूस करते हैं? समूचे संघ से आप इस वर्ष क्या अपेक्षा रखते हैं?

उत्तर : हमारे धर्मसंघ की नौ पीढ़ियों में इतने लम्बे समय तक काम करने का अवसर अन्य किसी आचार्य को नहीं मिला। पूर्ववर्ती आचार्यों की कृपा से वह अवसर मुझे मिला है। इसकी मुझे प्रसन्नता है। अनेक लोग अपने जीवन में जिन कल्पनाओं को संजोते हैं, उन्हें पूरा नहीं कर पाते। मुझे अपने मन की अनेक कल्पनाओं को साकार देखने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ है, इसका मुझे संतोष है।

संघ का अनुशास्ता या आचार्य होने के नाते मैं जिन अनुभूतियों की घाटी से गुजरा हूं, उसमें मिठास भी है और कड़वाहट भी है। उनको शब्द देना अभी संभव नहीं है। प्रशासन-तंत्र का जहां तक प्रश्न है, मैं राजतंत्र में पहुंच गया हूं। जिस समय मैंने संघ का दायित्व संभाला था, अंग्रेजों का शासन था। अब हमारा देश लोकतांत्रिक प्रणाली से जी रहा है। इन सब स्थितियों का प्रभाव हमारे धर्मसंघ पर नहीं हुआ, यह बात नहीं है। इसके बावजूद धर्मसंघ उदितोदित बना रहा, यह गौरव की बात है। वैसे यह वर्ष पूरे अतीत का लेखाजोखा करने का वर्ष है।

संघ से मेरी अपेक्षाओं का जहां तक सवाल है, मेरी सबसे अधिक अपेक्षाएं संघ से ही होंगी। जिस संघ से मैंने बहुत कुछ पाया है, उसे मैं सब दृष्टियों से सबल और सक्षम देखना चाहता हूं। तेरापंथ धर्मसंघ युगीन परिवेश में विकसित हुआ है। इसलिए इसमें बौद्धिकता बढ़ी है। फिर भी

यह अनुशासित, व्यवस्थित और संगठित है। मैंने इस संघ से जिस समय जो अपेक्षाएं कीं, वे प्रायः पूरी हुई हैं। भविष्य में भी यह मेरे स्वप्नों को आकार देता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

अपने धर्मसंघ के किसी भी सदस्य के विकास को देखकर मुझे प्रसन्नता का अनुभव होता है। पिछले वर्ष जब हम जोधपुर में चातुर्मास बिता रहे थे। एक अनुभवी और गंभीर व्यक्ति ने कहा–'आचार्यजी! कई आचार्य अपने शिष्यों को अधिक विकसित करना नहीं चाहते। उनके मन में यह आशंका बनी रहती है कि शिष्य अधिक प्रबुद्ध हो गए तो न जाने क्या हो जाएगा? पर आपके यहां ऐसा नहीं लगता। आप निःसंकोच अपने शिष्यों को विकास का अवसर देते हैं। इसका राज क्या है?' मैंने उस भाई की जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा–'हमारा संघ ऐसे संस्कारों में पला है कि वह कितना ही विकसित हो जाए, उच्छृंखल और अनुशासनहीन नहीं होगा। इसलिए मुझे संघ के किसी भी सदस्य को विकसित करने या देखने में किसी प्रकार की आशंका नहीं है। मैं चाहता हूं कि हमारा धर्मसंघ उत्तरोत्तर गतिशील रहता हुआ जन-जीवन के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बने।'

प्रश्न : आज समूचे विश्व में तनाव है, अशांति है। दुनिया महाविभीषिका के कगार पर खड़ी है। ऐसे समय में जैनदर्शन की अहिंसा ही विश्व को त्राण दे सकती है। इस संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : तनाव, अशांति और भय की समस्या किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की नहीं, विश्व की समस्या है। इसका समाधान राजनीति के पास नहीं है। जैनदर्शन इसका समाधान दे सकता है, बशर्ते कि मानव जैनदर्शन द्वारा सुझाए गए फार्मूलों का प्रयोग करे। ध्यान एक ऐसा ही प्रयोग है, जो मानव मन को संत्रास, भय, घुटन व तनाव से मुक्ति दे सकता है। जैन परंपरा में ध्यान की प्राचीन तकनीक है। उसकी आधुनिक ढंग से प्रस्तुति है–प्रेक्षाध्यान। इस ध्यान-पद्धति का मूल आधार है आत्मा से आत्मा को देखना। जिन-जिन लोगों ने इसका प्रयोग किया, उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त की। क्योंकि इसमें मानव-शरीर की ग्रंथियों के रासायनिक

बदलाव का प्रयोग करवाया जाता है। ग्रंथितंत्र के स्राव-परिवर्तन से मनुष्य की आदतें बदलती हैं और मानसिक शक्ति का विकास होता है। प्रेक्षाध्यान के साथ दूसरा तत्त्व है अणुव्रत। अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का व्यापक रूप में प्रसार हो तो विश्वशांति की दिशाएं प्रशस्त हो सकती हैं।

प्रश्न : सामाजिक विषमता, समाजवाद आदि की दिशा में जैनदर्शन के अपरिग्रह सिद्धांत की क्या भूमिका हो सकती है?

उत्तर : '**अपरिग्रहः परमो धर्मः**' यह जैनदर्शन का सशक्त स्वर है। सामान्यतः अहिंसा को परम धर्म कहा जाता है, पर तत्त्वतः अपरिग्रह के परिवेश में ही अहिंसा फलित हो सकती है। जहां परिग्रह है, वहां हिंसा का होना जरूरी है। इस दृष्टि से अहिंसा से भी उत्कृष्ट तत्त्व अपरिग्रह को मानना चाहिए।

सामाजिक विषमता का मूल है मनुष्य की असीमित आकांक्षा। आकांक्षाओं की सीमा करने के लिए भगवान महावीर ने सामाजिक संदर्भ में बारह व्रतों की परिकल्पना दी। उन्होंने श्रावक के लिए कुछ विशेषणों का प्रयोग किया, जैसे–अल्पेच्छ, अल्पारंभ, अल्पपरिग्रह। बारह व्रतों में श्रावक के इन्हीं विशेषणों की सार्थकता है। इनमें परिग्रह, भोगपरिभोग, यातायात आदि की सीमा करने का दिशानिर्देश है।

इस संदर्भ में एक विशेष प्रयोग की अपेक्षा अनुभव की जा रही है। उसके अनुसार किसी भी उद्योग से संबंधित छोटे-बड़े हर व्यक्ति उसमें सहभागी रहें, कोई मालिक या मजदूर न रहे तो संभव है आर्थिक और सामाजिक विषमता को दूर करने की दिशा में एक नई क्रांति घटित हो जाए। अमृत महोत्सव के अवसर पर हम समाज के सामने इस विषय में यह नया चिंतन प्रस्तुत करना चाहते हैं। काश! ऐसे प्रयोक्ता उपलब्ध हों तथा विषमता का अंत हो।

प्रश्न : जैनदर्शन विज्ञान-सम्मत संपूर्ण दर्शन है। इसमें विश्वधर्म बनने की क्षमता है। फिर वे कौन-से कारण हैं, जिनकी वजह से जैनधर्म दुनिया के अन्य देशों में फलफूल नहीं सका?

उत्तर : जैनधर्म की वैज्ञानिकता निर्विवाद है। इसकी व्यापकता की कमी का कारण जैनदर्शन की नहीं, जैनों की दुर्बलता है। जैनदर्शन हमारे देश की ऐसी कौम के हाथों में आ गया, जो अर्थप्रधान है। जिस धर्म या दर्शन को माननेवाले अर्थ-केंद्रित होकर रहेंगे, वे अपने धर्म का प्रचार-प्रसार कैसे कर सकेंगे?

दूसरी बात–जैनों में वैज्ञानिक बहुत कम हुए, इसलिए वैज्ञानिकों के सामने जैनदर्शन की यथार्थ प्रस्तुति नहीं हो सकी। कोई तत्त्व सामने ही नहीं आएगा तो उस पर नया अनुसंधान नहीं होगा। इसके अभाव में वह एक दायरे में सीमित हो जाएगा।

तीसरी बात–जैन मुनियों की अपनी सीमाएं होती हैं। वे वाहन का प्रयोग नहीं करते, इसलिए भारत से बाहर सुदूर देशों में उनका यातायात नहीं हो सकता। संपर्क और संचारसाधनों की कमी भी जैनधर्म के विकास में बाधक बनी हुई है। जैनधर्म विदेशों में नहीं पहुंचा, फिर भी उसकी क्षमता पर मुझे किंचित भी संदेह नहीं है। विश्वधर्म बनने की उसकी क्षमता आज भी उतनी ही है। अब इस दिशा में कुछ प्रयत्न हो रहे हैं, उनसे काम आगे बढ़ रहा है।

प्रश्न : जीव, अणु, परमाणु की जितनी सूक्ष्म और तर्कसंगत व्याख्या जैनधर्म में की गई है, उतनी और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। हमारे आगम साहित्य में अनन्त ज्ञानराशि छिपी पड़ी है। क्या विश्व-कल्याण के लिए अनेकान्तवाद, स्याद्वाद आदि का विश्वव्यापी प्रचार अपेक्षित है?

उत्तर : अपेक्षित क्यों नहीं, बहुत अपेक्षित है। जैनदर्शन में इतने वैज्ञानिक तत्त्व भरे पड़े हैं। उन तत्त्वों को वैज्ञानिकों के सामने अच्छे ढंग से रखा जाए और उन पर विशेष लक्ष्य से रिसर्च हो तो बहुत लाभ की संभावना है। मेरे अभिमत से विज्ञान के निकट अगर कोई दर्शन है तो जैनदर्शन है। अपेक्षा है उस वैज्ञानिकता के प्रस्तुतीकरण की। जैनविश्वभारती इस दिशा में कुछ प्रयत्न कर रही है। अगर यह प्रयत्न चलता रहा तो वांछित परिणाम आ सकता है।

प्रश्न : सामाजिक कुरीतियों से दूषित रूढ़िग्रस्त सामाजिक वातावरण के संदर्भ में समाज के आध्यात्मिक नेता के रूप में साधु-साध्वियों का क्या दायित्व है?

उत्तर : जैनसंघ चार भागों में विभक्त हैं–साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। समाज के विकास का संबंध इन चारों से है। साधु-साध्वियों का दायित्व है रूढ़िग्रस्त और बुराई से दूषित समाज को स्वस्थ बनाने का, पथदर्शन देने का। हमने इस दायित्व को महसूस किया है। नया मोड़ का समग्र अभियान समाज को रूढ़िमुक्त बनाने के लिए ही चलाया है। महिला-जागरण की दिशा में भी हम अनवरत प्रयत्न कर रहे हैं। श्रावक-श्राविकाओं का यह दायित्व है कि वे साधु-साध्वियों से प्राप्त मार्गदर्शन को क्रियान्वित करने के लिए तत्पर रहें। अर्थहीन परंपराओं का बोझ ढोते-ढोते जर्जर हो रहे समाज को रूढ़ियों से मुक्त करके शक्तिसंपन्न और जागरूक समाज बनाया जा सकता है।

प्रश्न : समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास व बढ़ती हुई उच्छृंखलता के लिए आपकी दृष्टि में कौन उत्तरदायी है? हमारी दूषित सामाजिक व्यवस्था या गलत शिक्षाप्रणाली?

उत्तर : इस संदर्भ में किसी एक व्यक्ति या व्यवस्था को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। समाज की व्यवस्थाएं और शिक्षा तो गलत नहीं, पर अधूरी शिक्षाप्रणाली नैतिक मूल्यों की गिरावट में निमित्त जरूर बनी है। मीडिया भी एक बड़ा निमित्त है। आज टी.वी., रेडियो, सिनेमा आदि का उपयोग जिस ढंग से हो रहा है, उससे इस युग की पीढ़ी में अपराधी मनोभावों का विकास हुआ है। सिनेमा, टेलीविजन आदि का सही ढंग से उपयोग किया जाए तो ये समाज और व्यक्ति-निर्माण के घटक बन सकते हैं, पर निर्माण की चिंता है किसे? अपने-अपने स्वार्थ और अपने-अपने मनोरंजन। समाज में नैतिक मूल्यों की स्थिरता के लिए आध्यात्मिक प्रयोगों की जरूरत है।

13. आलोकधर्मिता का प्रभाव

भारतवर्ष अध्यात्म, संस्कृति और परंपरा का देश है। इस देश की माटी में अध्यात्म की गंध है, संस्कृति के बीज हैं और परंपरा के फूलों-फलोंवाली लहलहाती पौध है। इस देश की धरती पर ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया है, जिन्होंने आत्म-जागरण, जन-जागरण, समाज-जागरण और राष्ट्र-जागरण के चौराहे पर खड़े होकर उन्मुक्त मन से आलोक का वितरण किया है। मनुष्य के जीवन में फैले हुए तमस को वही दूर कर सकता है, जो स्वयं आलोकित होता है। जिसके पास अपना जीवन उजालने के लिए भी आलोक नहीं होता, वह दूसरों को क्या बांटेगा और क्या करेगा? भगवान महावीर, भगवान बुद्ध और महात्मा गांधी उस आलोकधर्मी परंपरा के व्यक्तित्व हुए हैं, जिन्होंने अंधकार की हर चुनौती को झेलकर मानवता के मुंह पर लगी कालिख को धोने में सफलता प्राप्त की है।

महावीर, बुद्ध और गांधी हमारे अतीत के आलोक हैं। उन्होंने जो जीवंत दृष्टि दी, वह समय की परतों के कारण धुंधली होने लगी है। उस दृष्टि को पुनः साफ-सुथरी बनाने अथवा नई दृष्टि प्राप्त करने की अपेक्षा को नकारा नहीं जा सकता। केवल अतीत के उजालों को वे ही लोग खोजते हैं, जिनके पास अपना वर्तमान नहीं होता या जिन्हें वर्तमान की खबर नहीं होती। वस्तुस्थिति यह है कि हर युग के साथ अतीत की यादें होती हैं, वर्तमान का पुरुषार्थ होता है और भविष्य के सपने होते हैं। इन तीनों का समुचित योग होने से ही किसी युग का इतिहास अतीत से बेहतर हो सकता है।

भारतवर्ष में आज भी महावीर और बुद्ध की परंपरा जीवित है। उस परंपरा में ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो इस युग की त्रासदी को समझते हैं और

उसे दूर करने के लिए एक रचनात्मक बैचेनी को पालते हैं। उन व्यक्तियों में एक नाम है अमृतपुरुष आचार्यश्री तुलसी का। अपना जीवन आप जीने की अदम्य आकांक्षा ने जिनको ग्यारह वर्ष की उम्र में नई दिशा की ओर मोड़ दिया, उनका जीवन कितना महान है, बताने की नहीं, जानने की अपेक्षा है।

आचार्यश्री तुलसी सन् 1914 लाडनूं में जनमें, वहीं पर मुनि बने और गंगापुर में तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य बन गए। सन् 1947 तक वे अपने धर्म संप्रदाय की सीमाओं में काम करते रहे। अनेक पड़ावों वाली उस जीवन यात्रा के चौथे दशक में उनके मन में व्यापक स्तर पर काम करने की छटपटाहट पैदा हो चुकी थी, पर उसके लिए ठोस आधार तैयार नहीं हो पाया।

सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। आजादी की खुशियों में बेभान देश की जनता अपने मूलभूत दायित्व को विस्मृत न कर दे, इस दृष्टि से उन्होंने सोचा–भारतीय लोगों पर हुए अत्याचार उनके भीतर एक कुंठा पैदा कर सकते हैं। कुंठित मन व्यक्ति को गलत रास्तों पर जाने की प्रेरणा देता है। जिस देश की जनता गलत राह पकड़ ले, उस देश को शक्तिशाली, समृद्ध, स्वावलंबी और चरित्रनिष्ठ बनाने की कल्पना भी नहीं हो सकती। इसलिए भारतीय लोगों के सामने एक ऐसी आचार-संहिता होनी चाहिए, जो उनमें राष्ट्रीयता और नैतिकता के संस्कार संप्रेषित कर सके। मानव जीवन की न्यूनतम आचार-संहिता के रूप में कुछ नियमों का संकलन किया गया, जो अणुव्रत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ व्यक्ति अणुव्रती बने और कुछ कार्यकर्ता अणुव्रत के साथ जुड़ गए। बात यहीं समाप्त नहीं हुई। दूसरे चरण में अणुव्रत की संपूर्ण योजना बनाई गई। धीरे-धीरे उसे आंदोलन का रूप मिला। आज अणुव्रत जैन समाज का एकमात्र आंदोलन है, जो समूची मानव जाति के लिए काम कर रहा है।

अणुव्रत की योजना को क्रियान्वित करने के लिए व्यापक रूप में जनसंपर्क आवश्यक था। जनसंपर्क का एक सीधा और सशक्त माध्यम है–पदयात्रा। आचार्यश्री ने इसी माध्यम को काम में लिया। **चरैवेति चरैवेति चरन् वै मधु विंदति** उनके जीवन का विशेष सूत्र बन गया। यात्राकाल

में लाखों नए लोग उनसे परिचित हुए। उन्होंने अणुव्रत-दर्शन को समझा, आचार्यश्री के व्यक्तित्व को परखा और अणुव्रत यात्रा को निर्बाध मानकर हजारों लोग उसके राही बन गए।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व से अणुव्रत का जो आलोक फैला, वह जाति, वर्ग, वर्ण, प्रांत, देश, धर्म आदि सरहदों में सीमित नहीं था। एक व्यापक धर्मक्रांति के रूप में अणुव्रत का विस्तार नई संभावनाओं के द्वार खोल गया। राष्ट्रीय चरित्र के उन्नयन से सीधा जुड़कर अणुव्रत आज एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में सक्रिय है।

पिछले एक वर्ष से हमारे देश में इक्कीसवीं सदी में प्रवेश की चर्चा है। आज जिस देश का नागरिक इक्कीसवीं सदी की सिद्धश्री तक नहीं जानता है, उसे कम्प्यूटर और रोबोट युग के सुनहरे भ्रम में डालकर अंधेरे में रखना कहां तक उचित है? कम्प्यूटर और रोबोट मनुष्य को सुखी बना सकेगा, इसकी कोई गारंटी नहीं है। क्योंकि कम्प्यूटर का निर्माता और संचालक स्वयं मनुष्य है। ऐसी स्थिति में सारी आशाएं उसी पर केंद्रित हो जाती हैं। इस आशा की प्रकाशकिरण को उजागर करने के लिए मनुष्य को द्रष्टा होना जरूरी है। आत्मदर्शन की पृष्ठभूमि पर ही वह यथार्थ से साक्षात्कार कर सकता है।

आत्मदर्शन को नए युगदर्शन के साथ जोड़ने के लिए आचार्यश्री ने प्रेक्षा ध्यान का अवदान दिया जो एक प्रैक्टिकल प्रक्रिया है। प्रेक्षा ध्यान के प्रकाश से सैकड़ों-सैकड़ों पथभूलों ने मंजिल तक पहुंचाने वाले रास्ते की पहचान पाई है। आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक सभी मोर्चों पर प्रेक्षाध्यान की असंदिग्ध सफलता ने युवापीढ़ी को भी अपनी ओर खींचा है। डिस्को और ड्रग्स के अंधे कुएं में छलांग भरने वाली युवा मानसिकता अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान–इन दो बातों को गंभीरता से समझ ले तो आचार्यश्री की आलोकधर्मिता से हमारे देश की संस्कृति जगमगा उठेगी।

14. धर्मसंघ की दीर्घजीविता का उपाय

आचार्यश्री तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के नौवें आचार्य हैं। वि.सं. 1817 में इस धर्मसंघ की नींव रखी गई और उसे मजबूत बनाने का प्रयत्न किया गया। सवा दो सौ वर्षों की अवधि में धर्मसंघ का विस्तार ही नहीं हुआ, उसमें अनेक नए-नए आयाम खुल गए और खुलते जा रहे हैं। एक धर्मसंघ के निर्माण में जिन-जिन आकांक्षाओं का होना अनिवार्य होता है, उन सबको हमारे आचार्यों ने संजोया। इससे संघीय व्यक्तित्व को उजागर होने की नई संभावनाएं प्रकट हुईं।

आचार्यश्री लगभग पांच दशक से धर्मसंघ का शासनसूत्र संभाले हुए हैं। उनका युग विविधता का युग है, गतिशीलता का युग है और नवीनता का युग है। पचासवें वर्ष की देहरी पर खड़े होकर पूरे अतीत को देखा-परखा जाए तो ऐसा लगता है कि तेरापंथ धर्मसंघ का कायाकल्प हो गया है। मूलभूत आस्थाओं के दृढ़ीकरण के साथ संघ में जो नई चेतना आई है, वह एक शक्तिशाली नेतृत्व का जीवंत साक्ष्य है। आध्यात्मिक ऊर्जा के अक्षय स्रोतों की खोज में जो प्रयत्न किया जा रहा है, वह अभूतपूर्व है। जन-आकांक्षा के अनुरूप धर्म को जिस युगीन परिवेश में प्रस्तुति दी जा रही है, वह असाधारण है। इन सब परिवर्तनों-परिवर्धनों के बावजूद तेरापंथ धर्मसंघ की सादगी का सौंदर्य निराला है। ऐसी स्थिति में इस संघ के निर्माता आचार्य भिक्षु स्वयं धरती पर आकर इसे देखें तो शायद वे पहचान ही नहीं पाएंगे कि यह वही तेरापंथ है, जिसकी नींव उन्होंने लगाई थी।

इन शताब्दियों में धर्म के क्षेत्र में क्रांति करने वालों में आचार्य भिक्षु पुरोधा रहे हैं। आचार्य भिक्षु के समय में धर्मक्रांति की जो लहर उठी, उसे तीव्रता से आगे बढ़ाने में आचार्य तुलसी का अवदान बहुत मूल्यवान है।

आचार्यश्री महान स्वप्नद्रष्टा हैं। उन्होंने अपने युग में न जाने कितने और कैसे सपने देखे हैं। अब तक देखे अधिकांश सपने या तो पूरे हो गए हैं या पूर्णता के शिखर पर पहुंच रहे हैं। अब आचार्यवर ने एक नया सपना देखा है अपने धर्मसंघ को श्रमजीवी और यथार्थजीवी बनाने का।

19 अगस्त 1985 की उजली दोपहरी में ठीक एक बजे आचार्यश्री ने साधु-साध्वियों की एक विशेष गोष्ठी बुलाई। बिना किसी औपचारिकता के साधु-साध्वियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा–'हमें अपने धर्मसंघ को दीर्घजीवी, श्रमजीवी और यथार्थजीवी बनाना है। इसकी दीर्घजीविता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। क्योंकि आचार्य भिक्षु ने इसे ऐसा वरदान दिया है कि इसका जीवनकाल बढ़ता जा रहा है। किसी भी व्यक्ति या संघ के उज्ज्वल भविष्य के लिए उसका श्रमजीवी होना जरूरी है। जो जितना श्रमजीवी होता है, वह उतना ही दीर्घजीवी होता है। अमीरी में विलासिता पनपती है, जो कि आयुष्य को घटाती है। जो श्रमजीवी और यथार्थजीवी होता है, वही कुछ बन सकता है या कर सकता है।'

आचार्यश्री के उक्त कथन को यहां उद्धृत करने का इतना-सा उद्देश्य है कि संघ, समाज और मानव जाति को विकास की मंगलमय राहों में अग्रसर करते हुए भी वे व्यक्ति-व्यक्ति को अंतर्मुखी बनाने के लिए निरंतर पुरुषार्थ करते रहते हैं। जिस धर्मसंघ के नेता स्वयं पुरुषार्थजीवी नहीं होते, वे किसी को पुरुषार्थ की प्रेरणा कैसे दे सकते हैं? आचार्यश्री अपनी उम्र के आठवें दशक में प्रवेश कर चुके हैं। इस उम्र में भी प्रातः चार बजे से रात के दस-ग्यारह बजे तक अनवरत श्रम करते हैं। उनकी श्रमशीलता को देखकर ऐसा लगता है कि वे अभी भी पूर्ण यौवन में हैं।

आचार्यश्री समाधायक है। छोटी-बड़ी हर समस्या के प्रति वे जागरूक हैं। यही कारण है कि चिंतनशील व्यक्ति सम-सामयिक सवालों के उत्तर उनसे पाना चाहते हैं। उनसे प्रबुद्ध समाज को बहुत उम्मीदें हैं। वे कभी किसी को निराश करने की बात सोच ही नहीं पाते। संसार की सब आशाओं और अपेक्षाओं का ध्रुवीकरण कर उन्होंने अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान

और जीवन विज्ञान के नाम से जो तत्त्व दिए हैं, एक महान क्रांति के बीज इनमें छिपे हुए हैं।

बीसवीं सदी का आदमी हवा में उड़ने लगा है, चांद पर चहलकदमी करने लगा है, ग्रह-नक्षत्रों की दुनिया में झांकने लगा है, यंत्र मानव (रोबोट) का निर्माण करने लगा है, अपनी अधिकांश समस्याओं का समाधान कम्प्यूटर से पाने लगा है और अणु को तोड़कर ऊर्जा का अक्षय स्रोत खोजने में सफल होने लगा है। फिर भी वह इतना दुर्बल है, अशक्त है, असहाय है कि कुछ ही पलों में उसकी जिंदगी नामशेष हो सकती है। इस त्रासदी की भयावह सचाई का जब कभी अनुभव होता है, मनुष्य भीतर और बाहर से कांप उठता है।

ऐसी परिस्थिति में जबकि सारा संसार यंत्रजीवी और अयथार्थजीवी हो रहा है, एक छोटा-सा धर्मसंघ पुरुषार्थजीवी और यथार्थजीवी होकर क्या कर पाएगा? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसको उत्तरित करने के लिए 'इकोलॉजी' के सिद्धांत को समझना होगा। इकोलॉजी के अनुसार इस संसार में कहीं वृक्ष का एक पत्ता भी टूटता है, उसका प्रभाव ज्ञात-अज्ञात रूप से सब पर होता है। उसी प्रकार कहीं पर कोई समुदाय या व्यक्ति बदलता है तो उसका फायदा भी सारे संसार को मिलता है। हम किसी और का भला कर सकें या नहीं, अपना भला करें। इससे संघ और संसार का भला स्वयं होता रहेगा।

पुरुषार्थजीवी होने का अर्थ है–सुविधावादी मनोवृत्ति से ऊपर उठकर श्रम में विश्वास करना और अपनी शक्ति का गोपन किए बिना कर्म में प्रवृत्त रहना। साधु बनने के बाद भी यंत्रयुग की सुविधाओं में मन अटक जाएगा तो पुरुषार्थ की पूजा नहीं हो सकेगी। सारा संसार यांत्रिक जीवन जीने लग जाए, फिर भी साधु-संस्थाओं की सांस्कृतिक और सामाजिक जरूरतें कभी यंत्रों पर निर्भर नहीं हो सकतीं। इस दृष्टि से श्रम को अतिरिक्त मूल्य देने की जरूरत है।

यथार्थजीवी शब्द साधु को उपचारों की दुनिया से बाहर निकालकर वास्तविकता की ठोसता को अनुभव करने की दिशा देता है। उपचारों में

जीने वाला व्यक्ति तथाकथित हो सकता है, तथारूप नहीं। जैन आगमों में एक शब्द आता है–**तहारूवे समणमाहणे।** तथारूप शब्द यथार्थजीवी का बोधक है। जो व्यक्ति साधु का जीवन स्वीकार करके भी साधुत्व को जीता नहीं है, वह तथाकथित साधु तो हो सकता है, पर इससे आगे कुछ नहीं हो सकता। आचार्यवर ने इस संदर्भ में साधु-साध्वियों को उद्‌बोधन देते हुए कहा–'हम साधु बने हैं, पर किसी के दबाव या प्रभाव से नहीं, अपने विवेक से बने हैं। विवेक से होने वाला काम औपचारिक नहीं हो सकता। साधुत्व हमारी साधना है, मंजिल नहीं है। हमारी मंजिल है–वीतरागता। वीतराग बनने के लिए दृष्टिकोण को निरंतर आध्यात्मिक बनाए रखना जरूरी है। धर्मशासना के पचासवें वर्ष में मैं अपने धर्मसंघ में एक विशेष मोड़ देखना चाहता हूं। वह मोड़ नितांत आध्यात्मिक हो। आध्यात्मिकता, श्रमशीलता या यथार्थजीविता हमें विरासत में प्राप्त हैं। हम इनकी उपेक्षा न करें, इनमें कुछ अधिक उत्कर्ष लाएं, यह अपेक्षा है।'

आचार्यवर के इस स्वप्न को रूपायित करने के लिए हमें कुछ नया नहीं करना पड़ेगा। हमारे मनों पर आधुनिक युग का जो प्रभाव बढ़ रहा है, उसे उतारकर फेंकने भर की जरूरत है। यदि ऐसा हुआ तो तेरापंथ धर्मसंघ पुरुषार्थजीवी और यथार्थजीवी बनकर स्वाभाविक रूप से दीर्घतर और दीर्घतमजीवी बन जाएगा।

15. अतीत का आईना

मनुष्य के भीतर संभावनाओं का अक्षय खजाना होता है, किंतु जब तक उसे जीवन के साथ जोड़ा नहीं जाता, एक भी संभावना उजागर नहीं होती। जहां जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता, अर्थ नहीं होता, वहां नई संभावना का उदय भी नहीं हो सकता। जहां जीवन का प्रारंभ कुछ होने की दिशा में किया जाता है, वहां बीहड़ जंगल में भी नए गुलाब उग जाते हैं और जीवन विश्वास की सुगंधियों से भर जाता है।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी महान परिव्राजक हैं। उनके परिव्रजन का विशेष उद्देश्य है, अर्थ है। इसलिए उनके द्वारा रखा गया एक-एक कदम उनके उद्देश्य को सार्थकता देता है और उसका वांछित परिणाम भी आता है। आचार्यश्री ने ग्यारह वर्ष की नाजुक उम्र में परिव्रजन का महान पथ स्वीकार किया था। तब से अब तक वे अविराम चले हैं, चल रहे हैं। उनकी पदयात्रा को यदि आंकड़ों में प्रस्तुत किया जाए तो वह साठ हजार किलोमीटर की सीमारेखा को तोड़कर आगे बढ़ चुकी है। क्षेत्रस्पर्शना के दृष्टिकोण से उस पर विचार किया जाए तो पंजाब से कन्याकुमारी और कच्छ से कलकत्ता तक की धरती आचार्यश्री के चरणों की पावन माटी से आश्लेषित होकर चन्दन-सी महक रही है। पिछले तीन दशकों की उनकी पदयात्रा अपने आप में एक कीर्तिमान है। यात्रा-काल में केवल यात्रा ही उनका लक्ष्य नहीं है। इसलिए जनसंपर्क, प्रवचन, अध्ययन-अध्यापन, साहित्य-निर्माण आदि अनेक सृजनात्मक प्रवृत्तियां उस परिधि की परिक्रमा करती रहती हैं। आचार्यश्री के मन में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं है। इसलिए हर कौम और वर्ग के व्यक्तियों ने उनके पथदर्शन से

नया आलोक पाया है। उनके अंतःकरण की हजार-हजार प्रार्थनाएं घनीभूत होकर उनके प्रति समर्पित होती रहती हैं। इससे आचार्यश्री की विचारशक्ति और कर्मशक्ति बहुगुणित होकर मानव जाति के हित-चिंतन में प्रवाहित होती रहती है।

यात्रा-काल में आचार्यश्री गांवों में रहते हैं, कस्बों में रहते हैं और बड़े-बड़े शहरों में भी रहते हैं। वहां अबोध बच्चे, अशिक्षित महिलाएं, सड़कों पर मिट्टी जमाने वाले मजदूर, श्रमिक, कर्मचारी, शिक्षक, उद्योगपति, राजनेता और धर्मनेता–सभी लोगों से उनका संपर्क होता है। संपर्क के उन क्षणों में बहुत बार ऐसा कुछ घटित होता है, जो उस व्यक्ति या वातावरण को पूरी तरह से आलोकित कर देता है। वे सब प्रसंग इतने जीवंत और प्रेरक होते हैं कि उनकी स्मृति मात्र से नई रोशनी मिलती है। कुछ ऐसे ही यात्रा-प्रसंग यहां प्रस्तुत हैं।

बिना कुछ किए धार्मिक

आचार्यश्री अहमदाबाद में प्रवास कर रहे थे। सन् 1967, सितम्बर का अंतिम सप्ताह। अहमदाबाद हाउसिंग सोसायटी के चेयरमैन, महाराष्ट्र सरकार के भूतपूर्व मंत्री श्री नारायणराव पाटिल आचार्यश्री की सन्निधि में बैठे थे। आचार्यश्री ने उनको धार्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दी। वे बोले–'धर्म के प्रति लगाव तो है, पर समय नहीं है।' आचार्यश्री ने कहा–'अतिरिक्त समय लगाए बिना धर्माराधना कर सकते हैं या नहीं?' पाटिल महोदय उसके लिए उत्सुक हो उठे। उनकी अधीरता देखकर आचार्यश्री ने कहा–'आप जैसे व्यस्त लोगों के लिए हमने धर्म की नई व्याख्या की है।' 'यही तो मैं सुनना चाहता हूं', पाटिलजी के ऐसा निवेदन करने पर आचार्यवर ने कहा–'धर्म का अर्थ है जीवन की पवित्रता। धार्मिक बनने के लिए न तो आपको संन्यास लेने की जरूरत है, न क्रियाकांड करने की जरूरत है। आप जो कुछ हैं, ईमानदारी के साथ दिखने का प्रयत्न करें। आप जो कुछ कर रहे हैं, उसमें पूरी तरह से प्रामाणिक रहें। आप किसी को धोखा न दें, किसी को सताएं नहीं। बस यही धर्म है। क्या आपके पास ऐसा करने के लिए समय नहीं है?'

धर्म की इस नई परिभाषा ने पाटिल महोदय को भीतर तक भिगो दिया। उन्होंने अपने जीवन की रिक्तता को दूर होते हुए देखा और अत्यंत आत्मविश्वास के साथ कहा–'आचार्यजी! आपने बिना ही कुछ किए मुझे धार्मिक बना दिया।'

दवा और दुआ से भी बढ़कर

सन् 1968 की सर्दियों का समय। जनवरी के प्रथम सप्ताह में आचार्यश्री का प्रवास बम्बई के उपनगरों में था। कुछ लोगों से सुनकर तथा कुछ बातें समाचारपत्रों में पढ़कर दो बहनें आचार्यश्री के दर्शन करने आईं। आचार्यश्री से साक्षात्कार करने के बाद उनकी आंखों में चमक आ गई। एक बहन थोड़ी आगे बढ़कर बोली–'आचार्यजी! मेरा भाई बीमार रहता है, कोई दवा बताइए!' आचार्यश्री ने सहज भाव से कहा–'बहन! मैं डॉक्टर नहीं हूं।' यह बात सुन वह बहन अपनी अशेष आस्था बटोरकर बोली–'मैं जानती हूं कि आप डॉक्टर नहीं हैं, पर यह भी जानती हूं कि डॉक्टर जो काम नहीं कर सकते, आप कर सकते हैं। आप सिद्धपुरुष हैं। आपका आशीर्वाद ही हमारे लिए दवा है।' आचार्यश्री ने बहन को मंगल पाठ सुनाया। वह उसे दवा और दुआ, दोनों से भी बढ़कर मानती हुई प्रसन्नमन से लौट गई।

सीमा में असीम

बम्बई महानगर, चर्नी रोड स्थित राजकीय मुद्रणालय का नवनिर्मित भवन। सन् 1968, जनवरी का दूसरा सप्ताह। आचार्यश्री मुद्रणालय के विशाल हॉल में प्रवास कर रहे थे। उस दिन हॉल में कुछ छोटे कमरे खुले। भवन के अधिकारियों ने अनुरोध किया कि ये छोटे कमरे भी साधुओं के काम में आ सकते हैं। आचार्यश्री ने अपने आवास के लिए छोटा कमरा पसंद किया। प्रवचन की संपन्नता के बाद वे वहां बैठकर काम करने लगे। मुनि नथमलजी उधर आए। उन्होंने आचार्यवर को छोटे-से कमरे में देखकर कहा–'आज तो आपने भी सीमा और घेरा स्वीकार कर लिया।'

आचार्यश्री ने अपनी स्निग्ध दृष्टि उठाते हुए कहा–'घेरा डालना अच्छी बात नहीं है, पर घेरे में रहना बहुत जरूरी है। तीन दिनों से मैं इस विशाल

कक्ष में बैठता था। वहां कोई विशेष काम नहीं कर पाया। आज इस सीमित दायरे में बैठा हूं तो काम हो रहा है। वास्तव में सीमा में ही असीम काम हो सकता है।'

अणुव्रत पुस्तिका की कीमत

18 जनवरी 1968 को मध्याह्न में सिडनम कॉलेज, बम्बई के प्रिंसिपल श्री रेंगडे महोदय एवं राज्यसभा की सदस्या श्रीमती तारा साठे आचार्यश्री के सान्निध्य में बैठी थीं। अणुव्रत के संदर्भ में बात चल रही थी। किसी कार्यकर्ता ने एक अणुव्रत पुस्तिका प्रिंसिपल के हाथों में थमा दी। प्रिंसिपल ने पुस्तिका स्वीकार करते हुए पूछा–'इसकी कीमत क्या है?' कार्यकर्ता कुछ कहे, उससे पहले ही आचार्यवर गंभीर होकर बोले–'इस पुस्तिका की कीमत काफी है और वह आपको चुकानी होगी।' प्रिंसिपल महोदय कुछ समझ नहीं पाए, पर तारा बहन सब कुछ समझ गई। वह बोली–'आचार्यश्री के निर्देशानुसार इस पुस्तक की कीमत है अणुव्रती बनना। आपको अणुव्रती बनकर यह कीमत चुकानी होगी।' तारा बहन के इतना कहते ही वातावरण में मुक्त हास्य बिखर गया।

मैं सदा तैयार हूं

समुद्र तट पर निर्मित विशाल राजभवन। महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री पी.वी. चैरियन ने 25 जनवरी 1968 को प्रातः दस बजे अपने अतिथि कक्ष में आचार्यश्री का स्वागत किया। राज्यपाल की धर्मपत्नी श्रीमती तारा चैरियन भी उनके साथ थीं। राज्यपाल ने आचार्यश्री से पूछा–'आपका आश्रम कहां है?' आचार्यश्री बोले–'हमारा आश्रम कहीं नहीं है। हम तो घुमक्कड़ हैं। जहां जाते हैं, मकान मांगकर ठहर जाते हैं।' राज्यपाल पर इस बात का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा–'आचार्यश्री! यह क्रम बहुत सुंदर है। जीसस क्राइस्ट भी ऐसा ही करते थे। चिड़िया की तरह थोड़ी देर ठहरकर विश्राम करना और उड़ जाना।' आचार्यश्री ने राज्यपाल महोदय को अपने मिशन की अवगति देते हुए कहा–'मानव मानव कैसे बने, इस दृष्टि से हमने अणुव्रत आंदोलन चलाया है। इस आंदोलन के

द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति के सुधार की आचार-संहिता को प्रभावी बनाने का काम हो रहा है।'

राज्यपाल बोले–'आपका काम अच्छा है, देश को इसकी जरूरत है। मैं एक बार अणुव्रत के कार्यक्रम में भाग ले चुका हूं। आप मुझे इसके लिए जब भी कहेंगे, मैं सदा तैयार हूं।'

राज्यपाल महोदय ने आचार्यश्री से आगामी कार्यक्रम की जानकारी पाकर कहा–'आप दक्षिण भारत में अवश्य जाइए और भाषा-विवाद को रोकिए। वहां आपका प्रभाव पड़ेगा। दक्षिण जाते समय आपको भूकम्प-पीड़ित क्षेत्र कोयना भी जाना चाहिए।' राज्यपाल की पत्नी श्रीमती तारा चैरियन ने विनम्र भाव से निवेदन किया–'यह एक दुःखद घटना है। आचार्यश्री को वहां जाकर अपना आशीर्वाद देना चाहिए। स्वामीजी के आशीर्वाद से सब कुछ व्यवस्थित हो सकता है। यद्यपि सरकार की ओर से वहां राहत कार्य चल रहा है, पर उसमें धांधली बहुत चलती है। घायलों और बीमारों तक जो सामान पहुंचाया जाता है, उसका आधा हिस्सा बीच में ही गायब हो जाता है। ईसाई मिशनरी की नर्सेज वहां काम कर रहे हैं। स्वामीजी की साध्वियां भी वहां जाकर काम करें तो महाराष्ट्र सरकार उसके लिए व्यवस्था कर सकती है।'

यूरोप यात्रा का आमंत्रण

6 फरवरी 1968 अपराह्न में 'काउन्सिल आफ कोर्ट' के सदस्यों ने अणुव्रत सभागार में आचार्यश्री के दर्शन किए। अणुव्रत के संदर्भ में गंभीर चर्चा के बाद काउन्सलर्स ने तेरापंथ धर्मसंघ की कलात्मक वस्तुओं का निरीक्षण किया। लेखनकला, चित्रकला, पात्र-निर्माणकला, पात्रों पर किए गए लेखन को देखकर विदेशी काउन्सलर विशेष प्रभावित हुए। एक सदस्य ने तो भावविभोर होकर आचार्यश्री को यूरोप यात्रा का आमंत्रण भी दे दिया। उसने कहा–'हमने बहुत दुनिया देखी है, पर जीवन में ऐसा त्याग, ऐसी स्मृति (अवधान विद्या) और ऐसी कला का दर्शन कहीं नहीं हुआ। आचार्यश्री यूरोप में आए तो वहां काम हो सकता है।'

मैं कब मरूंगा?

बौद्ध भदन्त डॉ. बौराले के विशेष अनुरोध पर 7 फरवरी 1968 को मध्याह्न में आचार्यश्री बौद्ध कुटीर पधारे। जैनधर्म और बौद्धधर्म के समन्वय-बिंदुओं पर अच्छी चर्चा हुई। आचार्यश्री वहां से चलने को तैयार हुए तो बौद्ध कुटीर के एक भाई ने पूछा–'आचार्यश्री! आप महात्मा हैं। जन्म और मौत का आपको ज्ञान है। आप प्रश्नों का जवाब भी देते हैं। आप मुझे बताइए–'मैं कब मरूंगा?'

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा–'सप्ताह के सात दिनों में से किसी एक दिन आपकी मृत्यु अवश्य होगी।' यह बात सुनते ही वहां उपस्थित सब लोगों की आकृतियों पर मुस्कान फैल गई। प्रबुद्ध लोगों को भी आचार्यश्री की प्रत्युत्पन्न मेधा ने मुग्ध कर दिया।

विरोध हिन्दी का नहीं, राजनीति का

तमिलनाडु (चिदम्बरम्) का 'अन्नामलै विश्वविद्यालय' उस क्षेत्र का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। दक्षिण भारत में हुए हिन्दी विरोधी वातावरण का वह मुख्य केंद्र रहा है। हिन्दी विरोध को लेकर वहां एक बार पुलिस और छात्रों के बीच संघर्ष हो गया था। उस संघर्ष में एक विद्यार्थी शहीद भी हो गया। तब से उस परिसर में हिन्दी को लेकर तनाव का वातावरण था।

सन् 1969 में जनवरी मास के तीसरे सप्ताह के अंत में आचार्यश्री मर्यादा-महोत्सव के लिए चिदम्बरम् पहुंचने वाले थे। वहां पहुंचने से तीन दिन पहले विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसर आचार्यश्री से मिले और उन्होंने विश्वविद्यालय में प्रवचन करने का अनुरोध किया। आचार्यश्री ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। प्रोफेसर प्रसन्न होकर लौटने लगे। लौटने से पूर्व उन्होंने कहा–'आचार्यश्री! हम आपको श्रद्धा से सुनना चाहते हैं, पर साथ ही एक निवेदन है कि आप हिन्दी में न बोलें। हमारे यहां हिन्दी के प्रति वातावरण अच्छा नहीं है। विद्यार्थी हिन्दी के नाम पर मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं। हम आपको आमंत्रित कर ले जाएं और विद्यार्थी कुछ गड़बड़ कर दें तो हमारे लिए बहुत शर्म की बात होगी। इसलिए आप हमारे इस अनुरोध को स्वीकार कर लीजिए।'

आचार्यवर ने कहा–'मेरे मन में हिन्दी को लेकर कोई आग्रह नहीं है। यदि मैं तमिल जानता तो मुझे उसी भाषा में बोलने में प्रसन्नता होती। इंग्लिश में भी मैं बोल नहीं सकता। आप ऐसा करें कि युनिवर्सिटी में कार्यक्रम बनाएं और वहां हमारे शिष्यों को ले जाइए। वे आपको इंग्लिश या तमिल भाषा में मेरे ही विचार सुना देंगे।'

यह सुनकर प्रोफेसर बोले–'नहीं-नहीं, आचार्यजी! यह कभी नहीं हो सकता। प्रवचन तो आपका ही कराएंगे। हम तो केवल छात्रों की उद्दंडता के भय से यह निवेदन कर रहे हैं, आप तमिल या इंग्लिश में नहीं बोल सकते तो संस्कृत में ही बोलिए, पर पधारना आपको ही होगा।'

आचार्यवर संस्कृत भाषा के विशिष्ट विद्वान हैं, पर वह भी बोलचाल की भाषा नहीं है। इस दृष्टि से उन्होंने कहा–'मैं संस्कृत बोल सकता हूं, पर हिन्दी की तरह नहीं। प्रवाह के बिना बोलने में न मुझे आनंद आएगा और न श्रोताओं को। अतः इस कार्यक्रम को स्थगित करना ही उचित रहेगा।'

प्रोफेसर कार्यक्रम स्थगित करने के लिए सहमत नहीं थे। आखिर सोच-विचार कर निर्णय लिया गया कि आचार्यश्री प्रवचन का प्रारंभ संस्कृत में करेंगे और उसके बाद पूरा प्रवचन हिन्दी में होगा।

दो दिन बाद आचार्यवर चिदम्बरम् पहुंचे। अपने प्रथम प्रवचन का प्रारंभ तमिल भाषा में करते हुए उन्होंने कहा–'मुझे बहुत प्रसन्नता होती, यदि मैं अपने विचार तमिल में रख पाता, पर क्या करूं? मैं तमिल नहीं जानता, इसलिए हिन्दी में बोल रहा हूं।' **तमिल तेरियाद** इस वाक्य को सुनते ही तमिलनाडु के लोगों ने सामूहिक हर्षध्वनि की तथा बाद में होने वाले हिन्दी प्रवचन को पूरी शालीनता से सुना। हिन्दी का ट्रांसलेशन तमिल में हो रहा था, इस कारण विचार समझने में किसी को कोई कठिनाई नहीं हुई। प्रथम दिन का कार्यक्रम बहुत सफलता से संपन्न हो गया।

दो दिन बाद युनिवर्सिटी में कार्यक्रम था। आचार्यवर वहां पधारे। मुनिश्री नथमलजी (टमकोर) ने अपना वक्तव्य संस्कृत में दिया। पूर्व निर्णय के अनुसार आचार्यश्री भी अपना प्रवचन संस्कृत में शुरू करने वाले थे। उसी समय प्रोफेसर श्री रामलिंगम् ने खड़े होकर निवेदन किया–'हम सबने

मिलकर निर्णय कर लिया है कि हम आपको हिन्दी में ही सुनेंगे। आप प्रवचन का प्रारंभ भी हिन्दी में ही करें।' आचार्यवर ने उनसे कहा–'मेरी ओर से किसी प्रकार की बाध्यता नहीं है, हम तो आप जैसे चाहेंगे, वैसे सुना देंगे।' प्रोफेसर महोदय बोले–'आचार्यजी! पहले हमारे मन में एक भय था बच्चों के उत्पात का। उन्होंने आपके दो प्रवचन हिन्दी में सुन लिए। आपके कल के प्रवचन को सुनकर उनके मन में जमी हुई भाषा संबंधी सब भ्रांतियां दूर हो गईं। अब उनके मन में भी कोई आग्रह नहीं रहा है, इसलिए आप हिन्दी में ही बोलिए।'

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षक की वर्तमान स्थितियों के संदर्भ में विस्तार से प्रकाश डालते हुए अध्यात्मविद्या पर बल दिया। विद्यार्थियों ने व्यापक हर्षध्वनि के साथ आचार्यश्री को हिन्दी में सुना। यह विश्वविद्यालय के इतिहास की पहली घटना थी। छात्रों ने मांग की कि ऐसे आयोजन यहां बार-बार होने चाहिए।

बोलने का अधिकारी

पल्लावरम मद्रास का एक उपनगर है। वहां आचार्यश्री ने साप्ताहिक प्रवास किया। प्रवासकाल में अनेक कार्यक्रम समायोजित हुए। 26 नवम्बर 1968 को अणुव्रत पंडाल में अणुव्रत गोष्ठी का आयोजन था। तमिलनाडु के खाद्य मंत्री श्री के.ए. मदिय अलगन गोष्ठी के प्रमुख प्रवक्ता थे। वे अपने घर से कार में बैठकर आ रहे थे। उनके पास अणुव्रत साहित्य था। मार्ग में उन्होंने साहित्य पढ़ा। अणुव्रत के ग्यारह नियम पढ़कर उनका चेहरा कुछ गंभीर हो गया। उनके हाथ में सिगरेट थी। कुछ ही क्षणों में उन्होंने हाथ से सिगरेट फेंक दी और सिगरेट का पैकेट ड्राइवर को दे दिया।

ड्राइवर विस्मित होकर देखने लगा। उसने इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण पूछा तो श्री अलगन बोले–'जब तक मैं स्वयं अणुव्रत का आचरण नहीं करूंगा, तब तक अणुव्रत के बारे में बोलने का अधिकारी कैसे बनूंगा? केवल वक्तव्य देने से लाभ भी क्या है?' **पर उपदेशकुशल बहुतेरे** के युग में सभी वक्ता श्री अलगन की तरह सोचने लगें तो देश के नैतिक मरुस्थल में आचरण की नहर लाई जा सकती है।

क्या आप सिगरेट पीते हैं?

2 अप्रैल 1969 को आचार्यश्री केरल प्रदेश के अंकमालि गांव के जोसेफ हाई स्कूल में ठहरे हुए थे। अपराह्न के समय उन्होंने वहां से प्रस्थान किया। राजपथ पर आचार्यश्री का काफिला बढ़ रहा था। मार्ग में कुछ क्रिश्चियन बंधु मिले। आचार्यश्री को देखकर वे रुके। परस्पर परिचय हुआ। वार्तालाप चला। आचार्यश्री ने आगे बढ़ने से पूर्व उन लोगों से दक्षिणा मांगी। भाइयों ने अपने पॉकेट में हाथ डाले, कुछ टटोला और हाथ बाहर निकाल लिए। एक भाई ने विनम्रतापूर्वक कहा–'आचार्यजी! हमारी इच्छा है कि हम आपको दक्षिणा दें। यह हमारा कर्तव्य भी है, पर अभी हम चर्च से आ रहे हैं। इस समय हमारे पास कुछ भी नहीं है।'

आचार्यश्री की भेदिनी दृष्टि उनके पॉकेट पर टिकी थी। वे बोले– 'जेब तो भारी-भारी लगती है।' एक भाई ने जेब में हाथ डाला और सिगरेट का एक पैकेट एवं लाइटर निकालकर दिखा दिया। आचार्यश्री ने पूछा–'इसे नहीं दे सकते?' इस प्रश्न से क्रिश्चियन भाई विस्मित हो गए। वे आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोले–'आप तो संन्यासी हैं। क्या आप सिगरेट पीते हैं?' आचार्यश्री मुस्कराकर बोले–'पीता तो नहीं हूं, किंतु जो पीते हैं, उनसे छुड़ाने का प्रयत्न अवश्य करता हूं। मैं दक्षिणा में पैसा या कोई अन्य पदार्थ स्वीकार नहीं करता, किंतु लोगों के जीवन में जो बुराइयां हैं, उनकी मांग करता हूं।'

आचार्यश्री द्वारा दक्षिणा लेने का अद्‌भुत तरीका जानकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। सिगरेट छोड़ने की बात सुनकर वे घबरा गए, पर पुनः संभलकर बोले–'एक साथ इतना बड़ा त्याग करने में हम असमर्थ हैं। आप हमें आशीर्वाद दें, जिससे हम धीरे-धीरे इस बुराई से मुक्त हो सकें।'

संतों और उनकी वाणी के प्रति आस्था

आचार्यश्री की गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश आदि प्रांतों की लंबी यात्रा के मध्य इन प्रांतों में प्रांतीय और स्थानीय स्तर पर यात्रासंघ को अनेक सुविधाएं दी गईं। एक असांप्रदायिक

कार्यक्रम, देश में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और निःस्वार्थ काम करने वाले साधुसंघ की राष्ट्र को सेवाएं–इन सब बातों को ध्यान में रखकर आन्ध्र सरकार की ओर से जो परिपत्र जारी किया गया, उसका रूप इस प्रकार है–

1. आचार्यश्री और उनके संघ की आवास-व्यवस्था हेतु राज्यांतर्गत ग्राम पाठशालाओं के भवन दिए जाएं तथा आवश्यकता हो तो उन्हें उस दिन बंद कर दिया जाए।
2. आचार्यश्री छात्रों और ग्रामवासियों के बीच प्रवचन करेंगे। अस्तु, स्कूल में अध्यापक सभाएं आयोजित करें और रुचि लें।
3. ग्राम पंचायत संस्थाओं को आज्ञा दी जाए कि आचार्यश्री की अगवानी और स्वागत करें।
4. राज्य के जनसंपर्क अधिकारी आचार्यश्री के भाषणों के प्रसारण की व्यवस्था करवाएं।
5. अणुव्रत संबंधी साहित्य के क्रय हेतु सार्वजनिक पुस्तकालय, विद्यालय तथा सरकारी कार्यालयों के पुस्तकालय हेतु (क्रयार्थ) आदेश प्रसारित किए जाएं।
6. नगर निगम हैदराबाद आचार्यश्री का नागरिक अभिनंदन करे।
7. 30 जनवरी 1970 से 19 फरवरी 1970 तक आचार्यश्री हैदराबाद में रहेंगे। उस समय तक आयोजित होने वाले कार्यक्रमों व समारोहों में सम्मिलित होने के लिए समस्त भारतवर्ष से आने वाले प्रतिनिधियों की आवास-व्यवस्था हेतु नगर निगम द्वारा खाली मकानों को स्थानीय स्वागत समिति को संभालने की अनुमति प्रदान की जाती है।
8. विद्युत विभाग तथा जलप्रदायक योजना विभाग को आदेश दिया जाना चाहिए कि वे आगंतुक प्रतिनिधियों को बिजली और जल की सुविधा प्रदान करें।
9. प्रसारण विभाग (आकाशवाणी) तथा फिल्म डिवीजन अधिकारियों को कार्यक्रम का कार्य विवरण प्रकाशित करने में सहयोग प्रदान करने हेतु आदेश प्रदान किए जाएं।

10. सेमिनारों और सभाओं में सम्मिलित होने हेतु आने वाले मुख्य अतिथियों द्वारा उनके आवास हेतु व्यक्तिगत संपर्क करने तथा उनके विश्राम तिथि की सूचना देने पर राजकीय अतिथिगृह (गेस्ट हाउस) उपलब्ध होने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

आन्ध्र सरकार द्वारा प्रदत्त इन सुविधाओं के कारण यात्रा-संघ की व्यवस्था बहुत सुंदर ढंग से हुई। कर्नाटक और तमिलनाडु सरकार की ओर से भी सरक्युलर प्रसारित कर यात्रासंघ की व्यवस्थाओं के प्रति पूरी जागरूकता दिखाई गई।

मैं कम्यूनिस्ट हूं

6 मार्च 1968 को प्रातः आचार्यश्री महाराष्ट्र के प्रसिद्ध ऐतिहासिक शहर सतारा पहुंचे। उससे कुछ समय पहले महाराष्ट्र हाईकोर्ट के वरिष्ठ न्यायाधीश श्री चांदमल बोहरा ने आचार्यश्री के दर्शन किए। उन्होंने कहा– 'सतारा में मैं कई वर्षों तक रहा हूं। वहां बहुत लोगों से मेरा संपर्क है। मेरी इच्छा है कि मैं आपके प्रवासकाल में वहां रहूं, पर यह संभव कम लगता है। मैं अपने मित्रों को पत्रों द्वारा सूचित कर दूंगा। वे वहां सबको जानकारी दे देंगे।' पत्रों का कोई विशेष प्रभाव हो सकता है क्या? इस प्रश्नचिह्न में न्यायाधीश महोदय की बात विस्मृत हो गई, किंतु जिस दिन आचार्यश्री सतारा पहुंचे, वहां लोगों का सैलाब उमड़ पड़ा। हजारों व्यक्ति चांदमलजी के पत्रों की प्रेरणा से ही वहां आए थे।

रात्रिकालीन कार्यक्रम लगभग साढ़े तीन घंटे तक चला। कार्यक्रम में न्यायाधीश, वकील, शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता, व्यापारी और साधारण जन सभी लोग उपस्थित थे। आचार्यश्री अपना प्रवचन संपन्न करने वाले थे, उस समय श्रोताओं में सबसे अंतिम पंक्ति में खड़ा एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आगे आया। उसने माइक अपने हाथ में लेकर बोलना शुरू किया– 'आचार्यजी! मैं कम्यूनिस्ट हूं। आज तक मैंने धर्म में किंचित भी विश्वास नहीं किया और न ही मैं किसी साधु-महात्मा के पास गया। आज जब इधर से गुजर रहा था, आपकी वाणी ने मुझे आकृष्ट किया। एक घंटे से मैं आपका प्रवचन सुन रहा हूं। आपने धर्म की जो व्याख्या की है, उसे सुनकर

मेरे विचारों में तूफान मच गया है। आज मैं पहली बार किसी धर्माचार्य को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूं।' इतना कहकर वह व्यक्ति भावविह्वल होकर आचार्यवर के चरणों में प्रणत हो गया। वह व्यक्ति था सतारा का एडवोकेट श्री पाटिल।

नाड़ी की गति ठीक है

सन् 1970 में आचार्यश्री का चातुर्मासिक प्रवास मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध शहर रायपुर में था। रायपुर में आचार्यश्री का स्वागत जितना भव्य और व्यापक रूप में हुआ, विरोध भी उतना ही तीव्र और व्यापक रूप में हुआ। विरोधी लोग हिंसात्मक मोड़ ले चुके थे। गाली-गलौज तो साधारण बात थी। पथराव और आगजनी की घटनाएं घटित हो रही थीं। उस वातावरण को बदलने के लिए आचार्यश्री ने एक बार चातुर्मास में ही रायपुर छोड़ने का निर्णय ले लिया था, किंतु शहर के सभी धर्मों के विशिष्ट व्यक्तियों तथा सरकार के अनुरोध पर आचार्यवर ने अपना निर्णय स्थगित कर लिया। कुछ समय तक वातावरण शांत रहा, किंतु फिर से हिंसा भड़क उठी।

27 अक्टूबर को मध्याह्न में प्रवचन-पंडाल में संतों के सान्निध्य में कार्यक्रम चल रहा था। लगभग सवा दो बजे पंडाल के एक कोने से आग की लपटें उठीं। पंडाल से बाहर खड़ी एक बच्ची ने लपटें देखते ही हल्ला मचाया। लोगों की दृष्टि ऊपर उठी और वे भय से कांप उठे। कुछ समय में वहां शोले उछलने लगे और घास-फूस एवं वस्त्र से बना हुआ वह कलात्मक प्रवचन पंडाल जलकर भस्म हो गया। भीतर बैठे हुए लोग तत्परता से बाहर आ गए। पास ही खड़ी चार मोटरगाड़ियों ने आग पकड़ ली, पर स्वयंसेवकों के साहस और सतर्कता ने उनको भी बचा लिया।

जिस समय पंडाल जल रहा था, आचार्यश्री पंडाल के पिछवाड़े में दाएं हाथ की ओर बने मकान में एक विशेष गोष्ठी में व्यस्त थे। पंडाल में आगजनी की सूचना पाकर गोष्ठी में उपस्थित युवक नीचे चले गए। आचार्यश्री शांत भाव से वहीं बैठे रहे। सामने जलता हुआ पंडाल दिखाई दे रहा था। सहसा आग की लपटें मकान की ओर बढ़ने लगीं। आसपास रहने वाले लोगों और श्रावकों ने आचार्यश्री को पिछवाड़े की छत से दूसरे

मकान में जाने का अनुरोध किया, किंतु वे निष्कंप होकर बैठे रहे और बोले–'मैं कहीं नहीं जाऊंगा।'

दूसरी बार आचार्यश्री से निवेदन किया कि वे भीतरवाले कमरे में चले जाएं, किंतु उन्होंने इस निवेदन को भी स्वीकार नहीं किया। पंडाल को भस्मीभूत होते देखकर अनेक लोगों की आंखों में आंसू आ गए और अनेक लोग सिसकियां भरकर रोने लगे, किंतु आचार्यश्री तटस्थ द्रष्टा के रूप में बैठकर उस भयावह दृश्य को देखते रहे और अपने हृदय की धड़कन एवं नाड़ी की गति का परीक्षण करते रहे। उन्होंने न तो विरोधी लोगों के इस जघन्य कृत्य पर रोष प्रकट किया और न ही अपने संतुलन को विचलित होने दिया। उस समय जिसने भी आचार्यवर की इस मनःस्थिति को देखा, वह उनकी साधना के प्रति नत हुए बिना नहीं रहा।

सबसे ऊंची बात

आचार्यश्री उत्तर प्रदेश की यात्रा पर थे। एक पादरी आचार्यश्री से मिले। चर्चा चल पड़ी धर्मप्रवर्तकों और उनके सिद्धांतों की। चर्चा के मध्य पादरी बोले–'आचार्यजी! महाप्रभु ईशु क्राइस्ट ने जो बात कही है, किसी धर्मप्रणेता ने नहीं कही।' आचार्यश्री ने सहजता से उस बात को सुन लिया। पादरी फिर बोले–'महाप्रभु का सिद्धांत बहुत ऊंचा है। आपको पता है उन्होंने क्या कहा?' आचार्यश्री विवाद में जाना नहीं चाहते थे, इसलिए बोले–'महापुरुषों की बातें विशिष्ट ही होती हैं।' इतने पर भी पादरी को संतोष नहीं हुआ। वे उस बात को कहने के लिए उतावले हो रहे थे। उनकी उत्सुकता देख आचार्यजी ने उन्हें वह बात बताने का अवकाश दे दिया। पादरी बोले–'आचार्यजी! महाप्रभु ईशु ने कहा है कि अपने दुश्मन से भी दोस्ती करो, उसके साथ भी प्रेम का व्यवहार करो।' आचार्यश्री ने कहा–'महाप्रभु क्राइस्ट ने बहुत ऊंची बात कही है, पर भगवान महावीर ने जो कुछ कहा है, वह इससे भी ऊंची बात है।' पादरी महोदय को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूछा–'ऐसी कौन-सी बात है?' आचार्यश्री बोले–'भगवान महावीर ने कहा है कि किसी को दुश्मन मानो ही मत। पहले किसी को दुश्मन बनाओ, फिर उसके साथ प्रेम करो। इससे

तो अच्छा है कि संसार के किसी भी प्राणी को अपना दुश्मन मत समझो।' अब तो पादरी महोदय का चेहरा देखने लायक था। आचार्यवर ने उनसे कहा–'हमें हर धर्म की अच्छी बातों को समझना चाहिए, पर अपनी बात का अभिमान नहीं करना चाहिए।'

सत्ता का हस्तांतरण कैसे?

दिल्ली भारत की राजधानी है। वहां वि.सं. 1889 से तेरापंथ संघ के साधु-साध्वियों के चातुर्मासिक प्रवास होने लगे। पहला चातुर्मास तृतीय आचार्यश्री ऋषिराय के समय में मुनि जीतमलजी (भावी आचार्य) ने किया। आचार्यकाल में दिल्ली चातुर्मास करने का अवसर आचार्यश्री तुलसी को मिला। आचार्यश्री ने अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से युग को जो अवदान दिया है, उससे तेरापंथ राष्ट्रीय क्षितिज पर चमकने लगा है। आचार्यश्री के दिल्ली-प्रवास में देश के मूर्धन्य साहित्यकार, विचारक, राजनेता और समाजनेता आचार्यश्री से मिलते रहे हैं। सन् 1979 में अपनी पंजाब-यात्रा से पूर्व आचार्यश्री दिल्ली पधारे। उस वर्ष उन्होंने अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का मनोनयन किया था। दिल्ली-प्रवास में कांग्रेस पार्टी के नेता श्री यशवन्तराव चह्वाण ने आचार्यश्री से भेंट की। उन्होंने जिज्ञासा की–'आचार्यजी! हमारे यहां (राजनीति में) सत्ता-परिवर्तन के समय जो आपाधापी चलती है, किसी से अज्ञात नहीं है। सत्तारूढ़ पार्टी सत्ता से मुक्त होना नहीं चाहती और विपक्ष उसे सत्ताच्युत करने के लिए हर संभव प्रयत्न करता है। लोकमानस इतना जागृत नहीं है। उस पर प्रलोभन और भय का प्रभाव रहता है। ऐसी स्थिति में जो कुछ होता है, वह वांछनीय नहीं होता। आपके यहां सत्ता का हस्तांतरण कैसे होता है?'

आचार्यवर ने तेरापंथ धर्मसंघ की परंपरा बताते हुए कहा–'हमारे संघ में सत्ता को लेकर छीना-झपटी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस संबंध में सारे अधिकार आचार्य के हाथ में रहते हैं। आचार्य किस व्यक्ति को अपना उत्तराधिकार सौंपे? इसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं होता। जिसे यह महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा जाता है, उसके साथ भी किसी प्रकार के परामर्श की अपेक्षा नहीं रहती।' श्री चह्वाण को यह प्रक्रिया बहुत पसंद आई।

इंडियन कल्चर का नमूना

22 मार्च 1979 को एक जापानी विद्यार्थी नि. हुकासू ने आचार्यश्री के दर्शन किए। वह उस समय जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा था। वह हिन्दी पढ़ता था और थोड़ी-थोड़ी बोलता भी था। उससे जब पूछा गया कि वह यहां क्यों आया है तो उसने बताया–'मेरे एक इंडियन फ्रेण्ड ने मुझे कहा कि आचार्य तुलसीजी महान संत हैं। तुम उनसे मिलो और इंडियन कल्चर का एक नमूना देखो। अपने मित्र की प्रेरणा से मैं यहां इंडियन कल्चर का साक्षात्कार करने आया हूं।'

आप प्रसन्न हैं, मैं भी प्रसन्न हूं

आचार्यवर के दिल्ली-प्रवास काल (1979) में साहित्यकारों, पत्रकारों, राजनेताओं, विधायकों, उद्योगपतियों के साथ कुछ वैज्ञानिक भी संपर्क में आए। उनमें डॉ. आत्माराम और डॉ. रमन्ना का नाम उल्लेखनीय है। डॉ. आत्माराम पूर्वपरिचित थे। डॉ. रमन्ना पहली बार आचार्यश्री से मिले। वे प्रतिरक्षा विभाग के वैज्ञानिक सलाहकार और भाभा इंस्टीट्यूट के अध्यक्ष पद पर कार्यरत थे। अणुव्रत विहार में वे आए और आचार्यवर का अभिवादन कर बैठ गए। आचार्यश्री ने बातचीत का सिलसिला शुरू करते हुए कहा–'जब हम दक्षिण में गए थे, तब आपसे मिलना नहीं हुआ।' डॉ. रमन्ना बोले–'आचार्यजी! मैंने तीस साल पहले ही घर छोड़ दिया।' इस पर आचार्यश्री मुस्कराते हुए बोले–'हमने पचास साल पहले घर छोड़ दिया।' इस मधुर विनोद प्रसंग से शुरू हुए वार्तालाप ने उस समय दूसरा मोड़ ले लिया, जब डॉ. रमन्ना ने अनेकान्त के बारे में कुछ जानना चाहा।

आचार्यश्री से मिलने के लिए आने वाले लोगों का तांता लग रहा था। अनेकान्त जैसे गंभीर विषय पर बात करने के लिए जिस एकांत की जरूरत थी, वह वहां नहीं था। इसलिए आचार्यश्री ने युवाचार्यश्री को निर्देश दिया कि वे डॉ. रमन्ना से बात करें। लगभग एक घंटा तक विभिन्न कोणों से अनेकान्त पर चर्चा करने के बाद डॉ. रमन्ना आत्मविभोर हो उठे। वे आचार्यश्री के पास आकर बोले–'आचार्यजी! बहुत वर्षों से मैं जैन लॉजिक

के बारे में जानना चाहता था, पर मुझे अवसर नहीं मिला। आज मैं बहुत प्रसन्न हूं, क्योंकि मेरी एक चिरपालित अभिलाषा पूरी हो गई।'

आचार्यश्री डॉ. रमन्ना की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता को जोड़ते हुए बोले–'आज मैं भी प्रसन्न हूं। मेरा भी एक स्वप्न पूरा हुआ है। मैं चाहता था कि हमें कोई पहुंचा हुआ वैज्ञानिक मिले, जिसे जैनदर्शन और जैनन्याय के गूढ़ तत्त्वों को समझाया जा सके। आज आप जैसे वैज्ञानिक मिले तो हमारी भावना भी सफल हो गई।'

पूरा शहर बुक हो गया

सन् 1979 लुधियाना चातुर्मास कर आचार्यश्री ने 1980 का मर्यादा-महोत्सव संगरूर किया। जनवरी के तीसरे सप्ताह के आखिरी दिनों में आचार्यश्री संगरूर पहुंचे। समूचे भारतवर्ष में प्रवास करने वाले तेरापंथी समाज के लिए संगरूर आकर्षण का केंद्र बन गया। बाईस जनवरी तक वहां बाहर से हजारों व्यक्ति पहुंच गए थे। अनेक क्षेत्रों के लोग स्थानीय लोगों से संपर्क कर अपने लिए स्थान सुरक्षित रखने का अनुरोध करने लगे। शहर के स्कूल, धर्मशाला, गेस्टहाउस आदि सब आरक्षित हो गए। इसी क्रम में अहमदाबाद के बांगड ब्रदर्स ने संगरूर के बैंक मैनेजर के पास फोन किया–'हम लोग बीस जनवरी से पचीस जनवरी के बीच संगरूर पहुंच रहे हैं। हमारे ठहरने के लिए एक कोठी की अपेक्षा है आवश्यकता हो तो पूरे एक महीने का किराया देकर भी कोठी बुक करा लें।' मैनेजर महोदय ने उत्तर दिया–'आपको संगरूर आना हो तो पचीस जनवरी के बाद कार्यक्रम बनाइए। अभी हमारे यहां आचार्य तुलसीजी आए हुए हैं। उनके समारोह में आने वालों के लिए पूरा शहर बुक हो चुका है।'

मैनेजर महोदय के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब बांगड ब्रदर्स वालों ने बताया कि वे लोग भी उसी कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आ रहे हैं। आखिर उन्होंने स्थानीय कार्यकर्ताओं से संपर्क कर अहमदाबाद से प्राप्त संवाद सुनाए और उनके लिए स्थान की व्यवस्था की।

आचार्यश्री की यात्राओं में घटित होने वाले ऐसे सैकड़ों-सैकड़ों प्रसंग हैं, जो रोचक हैं, प्रेरक हैं और इतिहास की दुर्लभ सामग्री हैं। वैसे आचार्यश्री

की यात्राओं के कई विवरण मुद्रित हो चुके हैं। उनमें यत्र-तत्र ऐसे उद्‌बोधक संस्मरणों का संकलन है। संस्मरण किसी भी व्यक्ति के जीवन में घटित हो जाते हैं, पर महान व्यक्तियों के संस्मरण भी महान होते हैं। बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं, जो समय पर पकड़ में न आने से काल के प्रवाह में बह जाती हैं और साहित्य की दुर्लभ सामग्री विस्मृत हो जाती है। यदि पैनी दृष्टि और प्रखर लेखन से आचार्यश्री के जीवन के विविध प्रसंगों का आकलन किया जाए तो हजारों-हजारों ऐसे प्रसंग संकलित हो सकते हैं, जो युग-युग तक लोकजीवन को नया आलोक दे सकते हैं।

16. मन के अंधेरों को उजालने वाला महासूर्य

विक्रम की इक्कीसवीं सदी का पहला दशक। समय उस दशक के मध्य में खड़ा था। उन दिनों आचार्य तुलसी लाडनूं आए हुए थे। उनके व्यक्तित्व में कोई ऐसा तत्त्व था, जिसे देखते ही मन में विपुल विश्वास व गहरा आश्वास जाग गया। उनका सौंदर्य अर्हतों के सौंदर्य का प्रतिस्पर्द्धी था। वह मन और आंखों की सीमा में समा ही नहीं सकता। सहज प्रसन्न मुखमुद्रा, विशाल लोचन, सघन भौंहें, लंबे कान, भव्य ललाट, ललाट पर खींची दृढ़ निश्चय की रेखा, नाजुक हाथ, कोमल पांव, देखने की अनूठी अदा, बात करने का निराला ढंग। प्रथम दर्शन में ही मेरा किशोर मन उस अलबेले योगी पर निछावर हो गया। मेरे पास पारदर्शी आंखें नहीं थीं। फिर भी मुझे लगा कि इनके सफेद कपड़ों से भी अधिक उजला है इनका मन। जीवन की पवित्रता रोम-रोम से छन-छनकर बाहर टपक रही है। इस छोटी-सी देह के दीवट में कोई दिव्य ज्योति जल रही है। मैंने अनुभव किया कि मुझे इसी ज्योति की प्रतीक्षा थी। मैं उनकी ओर देखने लगी तो देखती ही रही। मन नहीं भरा, आंखें तृप्त नहीं हुईं।

सार्थकता का अनुभव

मैंने सात वर्ष की उम्र में आचार्यश्री को समझपूर्वक देखा। पंद्रह वर्ष की उम्र में मुझे पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रवेश मिला। उन्नीस वर्ष की उम्र में तेरापंथ की आदिभूमि केलवा में आचार्यश्री ने मुझे दीक्षित किया। दीक्षा के बाद मैं उनकी मंगल सन्निधि में साधना करने और शिक्षा पाने में व्यस्त हो गई। दीक्षित होते ही आचार्यवर ने हमें दशवैकालिक सूत्र की वाचना दी। उससे मेरी साधना का पथ प्रशस्त हुआ। उसी चातुर्मास में उनके पास 'भिक्षुशब्दानुशासनम्' पढ़ने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ। मेरे अध्ययन

की दिशा खुलने लगी। तीन वर्षों तक व्याकरण, काव्य, दर्शन और आगम पढ़ने का मौका मिला। मैंने धन्यता का अनुभव किया। उस अवधि में शाब्दिक वात्सल्य पाया या नहीं, मुझे याद नहीं है। पाया भी तो शब्दों की आकृति ध्यान में नहीं है, पर उनके अमृतभरे नयनों से झरते कृपानिर्झर से मैं सदा अभिस्नात होती रही। शिक्षा का चालू क्रम संपन्न होते ही आचार्यवर ने अपनी मौन कृपा को प्रथम अभिव्यक्ति दी और मुझे समुच्चय का पानी लाने के लिए नियुक्त किया। उस दिन मुझे ज्वर था। नियुक्ति के समय मैं प्रत्यक्षतः उपस्थित नहीं थी। साध्वियों ने आकर सूचना दी तो मुझे अनुभव हुआ कि मैं जीवन की सार्थकता के प्रथम चरण तक पहुंच गई हूं।

लगभग आठ साल तक मुझे उदक लाने की सेवा का अवसर मिला। उस अवधि में दक्षिण भारत की लंबी यात्रा हुई। यात्राकाल में गर्मी का मौसम और लंबे विहारों में उदक लेकर आचार्यश्री की अगवानी में जाने का सबसे अधिक मौका मुझे मिला। इस बात को यों भी कहा जा सकता है कि सामने जाने वाली दो साध्वियों में एक प्रायः मैं होती थी। उन वर्षों में आचार्यश्री को कुछ निकटता से देखा। प्रतिदिन निकट जाने का अवसर मिलने पर भी मुझे यह अपेक्षा नहीं थी कि गुरुदेव कोई प्रेरणा दें, कभी कोई बात करें या प्रशंसा के दो शब्द कहें, किंतु एक छोटी-सी आकांक्षा मन के किसी कोने में अंगड़ाई लेकर खड़ी हो गई। मैं चाहती थी कि वे मुझे कृपापूर्ण मुस्कराती आंखों से एक बार देख लें। भीतर से कोई चाह जागती है तो वह अपने आप राह बना लेती है। आचार्यवर कभी बहुत अधिक लोगों से घिरे होते अथवा किसी विशेष कार्य में व्यस्त रहते, उस प्रसंग को छोड़कर उनके नजरों की दौलत सदा ही पाई। मेरे लिए वह सबसे बड़ा खजाना था। उससे बढ़कर मेरे जीवन की कोई उपलब्धि नहीं थी।

संकेतों की भाषा

साध्वी से साध्वीप्रमुखा पद पर नियुक्ति तक ग्यारह वर्षों की यात्रा में अनेक बार ऐसे प्रसंग आए, जब आचार्यश्री ने कुछ छोटे-बड़े काम करने के निर्देश दिए। मेरा एक मानसिक संकल्प था कि गुरुदेव जिस काम के लिए कहेंगे, उसे करने की कोशिश करूंगी। उसको अस्वीकार नहीं करूंगी।

इस छोटे-से संकल्प ने मुझे कुछ बनने का मौका दिया। मैंने पढ़ना-लिखना सीखा। थोड़ा-थोड़ा बोलना सीखा। किसी के साथ बातचीत करने में बहुत सकुचाती थी। गुरुदेव की प्रेरणा से इस संकोच को भी कम किया। किसी नई बात पर स्वतंत्र रूप से सोचना भी शुरू किया, किंतु दायित्व के नाम से ही मैं घबराती थी। निर्देश का पालन करने की दृष्टि से मैं अभ्यस्त हो चुकी थी, पर किसी को निर्देश देने की मनःस्थिति निर्मित नहीं हुई थी। दक्षिण यात्रा से लौटते समय एक बार आचार्यश्री ने कहा–'निर्देश पाकर काम करना एक बात है, अपनी जिम्मेदारी से काम करना दूसरी बात है। जिम्मेदारी से काम करना सीखो।' मैंने इस बात को भी बहुत साधारण रूप में लिया। क्योंकि मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मुझे किसी दायित्व का निर्वाह करना होगा।

दक्षिण यात्रा में आचार्यश्री ने अणुव्रत के एक स्तंभ के लिए कुछ लिखने का निर्देश दिया। उसमें मुझे स्वतंत्र रूप से कुछ लिखना नहीं था। दो-चार प्रश्न बनाकर गुरुदेव से ही उनके उत्तर लेने थे। मैंने वह काम शुरू कर दिया। मुझे उसमें आनंद आने लगा। गंगाशहर-प्रवास के दिनों में एक बार उन्होंने कहा–'आगे महोत्सव के कार्यों की व्यस्तता बढ़ जाएगी। अणुव्रत के दो-तीन अंकों की सामग्री एक साथ ले लो।' एक दिन मध्याह्न में श्रीचरणों में उपस्थित हुई। अणुव्रत का काम हो गया। उसके बाद गुरुदेव ने बहुत सहजता के साथ कहा–'कनकप्रभा! मान लो हम तुझे कोई दायित्व सौंप दें तो तुम क्या करोगी?' दायित्व के नाम से ही शरीर में सिहरन दौड़ गई और आंखें नम हो गईं। मैंने निवेदन किया–'गुरुदेव! जिस दिन जो काम कराना हो, आप आज्ञा देते रहें, पर मैं कोई दायित्व वहन कर सकूं, इतनी क्षमता मुझमें नहीं है। मैं जैसी भी हूं, आपके सामने हूं। दायित्व का बोझ मुझे इतना दबा देता है कि मैं हिम्मतपस्त हो जाती हूं।' आचार्यश्री की पारदर्शी दृष्टि ने मेरे मन के भीतर उठते हुए तूफान को देखा और उसे शांत करते हुए कहा–'अच्छा, अभी तो जाओ। फिर कभी सोचेंगे।' मैं सर्वथा निश्चिंत होकर चली गई। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त संकेत को भी मैंने किसी बड़े दायित्व की दृष्टि से नहीं लिया।

उन्हीं दिनों आचार्यश्री गंगाशहर से बीकानेर जाने वाले थे। वे काफी साधु-साध्वियों को गंगाशहर छोड़कर जा रहे थे। विहार से पहले उन्होंने मुझ से पूछा–'तुम कहां रहोगी?' मैंने निवेदन किया–'गुरुदेव की सेवा में बीकानेर जाना है।' आचार्यवर ने विनोद करते हुए कहा–'तुम नहीं जाओ तो समुच्चय का पानी कौन लाए?' मैंने निवेदन किया–'पानी लाने वाली साध्वियां बहुत हैं, यह तो मेरा सौभाग्य है।' आचार्यश्री हंसते हुए बोले–'देखते हैं, कितने दिन पानी लाती हो?' कुछ दिनों बाद उन्होंने बताया कि यह कथन भावी का संकेत था, किंतु मैं उसे समझ नहीं पाई। मैंने सहजभाव से कह दिया–'जब तक गुरुदेव की कृपा रहेगी, पानी लाती रहूंगी।'

यह सब कैसे हुआ?

विक्रम संवत् 2028 माघ कृष्णा त्रयोदशी। प्रातःकाल का समय। हजारों-हजारों लोगों की उपस्थिति। सैकड़ों साधु-साध्वियां। उस दिन आचार्यश्री एक विशेष घोषणा करने वाले थे। लगभग बाईस महीनों से तेरापंथ धर्मसंघ में साध्वीप्रमुखा का स्थान खाली था। आचार्यश्री की मानसिकता थी कि एक वर्ष और देखा जाए, किंतु साध्वियों की भावना का मूल्यांकन हुआ। माघ कृष्णा एकादशी को कुछ घटित होने का आभास मिला, किंतु कारणवश उसे टाल दिया गया। त्रयोदशी को सूर्योदय के तत्काल बाद साध्वियां गुरु-वंदन के लिए गईं। उस समय आचार्यवर ने कहा–'आज प्रवचन के समय साध्वियों की व्यवस्था करनी है।' वातावरण में उत्साह की लहर दौड़ गई। कुछ व्यक्तियों ने अनुभवों के अश्वों की लगाम हाथ में थामी। अश्वों ने दौड़ लगाई, पर वे उन्हें मंजिल तक नहीं पहुंचा सके। मंजिल का किसी को पता भी नहीं था, फिर भी मन कहीं रुकता नहीं था। अनुमानों, संभावनाओं और कल्पनाओं की भीड़ में नए-नए चेहरे उभरते गए और नेपथ्य में जाते रहे। कुतूहल उत्कंधर होकर देख रहा था। पूरी जनसभा की यही स्थिति थी।

दस बजे के बाद आचार्यश्री ने इष्ट का स्मरण किया और अपने हाथ से लिखा नियुक्तिपत्र पढ़ा। तुमुल हर्षध्वनि के बीच उन्होंने कहा–'कनकप्रभा! आगे आ जाओ।' मैंने वे शब्द सुने, पर मैं यह नहीं समझ सकी कि

आचार्यवर का वह आमंत्रण मेरे लिए था। मैं बैठी रही। निकटस्थ साध्वियों ने मुझे सूचित किया–'गुरुदेव तुम्हें आगे बुला रहे हैं।' मैं हड़बड़ाकर उठी। साध्वियों से रास्ता मांगने की जरूरत ही नहीं पड़ी। उन्होंने अपने आप ही रास्ता दे दिया। मैं यंत्र-चालित-सी साध्वियों की अग्रिम पंक्ति से भी आगे पहुंच गई। क्या कहूं? क्या करूं? मैं कुछ समझ नहीं पाई। मेरे असमंजस को तोड़ते हुए आचार्यवर ने मुझे खड़ी होने के लिए निर्देश दिया। मैं खड़ी हो गई। मैं खड़ी-खड़ी कांप रही थी। दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। फिर भी मैं खड़ी रही। आचार्यवर ने नियुक्तिपत्र मेरे हाथों में थमा दिया। उपहारस्वरूप और भी कुछ दिया। मेरा मन वहां नहीं अटका। मैं एक ही बात सोच रही थी कि यह सब कैसे हो गया?

मानसिक द्वंद्व

साध्वीप्रमुखा की नियुक्ति के संदर्भ में आचार्यश्री का निर्णय सर्वथा कल्पनातीत था। उनके इस निर्णय से बहुत लोग चमत्कृत थे। कुछ व्यक्तियों के मन में संशय की धुंधली रेखाएं थीं, बावजूद उनके इस चमत्कार ने संघ को खुशियों से सराबोर कर दिया, पर सबसे बड़ी परेशानी मेरे सामने थी। दीर्घकाल तक चले उस कार्यक्रम में अनेक बार मन में आया कि इस दायित्व को अस्वीकार कर दूं। मेरे भीतर अंतर्द्वंद्व-सा छिड़ गया। एक मन कहता कि खड़ी होकर नियुक्तिपत्र लौटा दूं। दूसरा मन कहता–'ऐसी मूर्खता भूलकर भी मत कर लेना।' पहला मन झकझोरता–'इस चक्रव्यूह में एक बार फंस गई तो पुनः निकलना कठिन हो जाएगा।' दूसरा मन कहता–'इसे चक्रव्यूह मानना ही भूल है। यदि वह वास्तव में चक्रव्यूह है तो भी फंसाने वाले गुरु हैं। गुरु के काम में हस्तक्षेप का तुम्हें क्या अधिकार है?' मन की एक तंरग बोल उठी–'जानबूझकर कांटों का ताज क्यों पहन रही हो? अभी तो कुछ नहीं हुआ है। इसे पहनने के बाद उतारना भारी हो जाएगा।' दूसरी तरंग ने अपनी दलील प्रस्तुत करते हुए कहा–'तुम समर्पण का मजाक क्यों कर रही हो? द्रोणाचार्य ने एकलव्य से दक्षिणा में अंगूठा मांगा। वह जानता था कि धनुर्विद्या में अंगूठे का कितना मूल्य है, किंतु उसने अंगूठा काटने में एक पल की भी देरी नहीं की। गुरु के प्रति तुम्हारा सच्चा समर्पण है तो उसका मूल्य चुकाओ।'

कई घंटों की कशमकश के बाद भी मैं एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाई। मेरी स्थिति सांप-छछूंदर जैसी हो गई। मैं न तो गुरु के निर्णय को मन से स्वीकार कर पाई और न उसे अस्वीकार करने का साहस जुटा पाई। उस अस्थिर मनोदशा में मेरा शरीर पूरी तरह से स्थिर था। लगभग तीन घंटों तक मैं वज्रासन में बैठी रही। आंख उठाकर इधर-उधर देखना तो दूर रहा, मैं हिल भी नहीं पाई। उस सभा में ऐसे लोग भी बहुत थे, जिनकी नजरें मुझ पर थीं। वे मेरी प्रतिक्रिया जानने के लिए उत्सुक थे, किंतु वहां मेरी उपस्थिति एक बुत से अधिक नहीं थी।

गुरु का विराट रूप

कार्यक्रम संपन्न हुआ। मैं आदतवश पानी लाने हेतु जाने के लिए उद्यत हुई। मुझे रोक दिया गया। भीड़ काफी छंट गई थी, फिर भी कुछ लोग आचार्यश्री को घेरे हुए थे। वे चहलकदमी कर रहे थे। मैंने निवेदन किया–'गुरुदेव! मैं कुछ जानती भी नहीं हूं, काम कैसे करूंगी? आप किसी अनुभवी साध्वी से काम कराएं।' मन के किसी कोने में भय सिर उठा रहा था कि इस बात से गुरुदेव अप्रसन्न हो गए तो क्या होगा? पर गुरुदेव तो सम्मोहन की कला में पारंगत थे। वे उस समय अप्रसन्न होकर शीशे-से नाजुक मन को तोड़ना नहीं चाहते थे। उनके आश्वस्ति भरे दो बोलों ने मेरे टूटते हुए मन को थाम लिया।

नया वेश, नया परिवेश, नया दायित्व और नया अनुभव। मैं भीतर और बाहर, दोनों ओर से अव्यवस्थित हो गई। नींद, भूख और उत्सर्ग की अव्यवस्था ने शरीरतंत्र को हिला दिया। मन पहले से ही डांवाडोल था। महोत्सव का समय निकट था। यात्रियों का प्रवाह आ रहा था। दिन-रात साध्वियों का घेराव। अपने आपको संभालूं या आने वालों को। उन दिनों आचार्यश्री ने जिस सहजता से मुझे संभाला, मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। जब भी मेरा मन व्यथित होता, मैं उनके पास पहुंच जाती और मुक्ति के लिए अनुरोध करती। एक ओर कार्यों की गंभीरता, दूसरी ओर अधीरता, किंतु उनका धैर्य कभी डोला नहीं। वे मुझे समझाते, आश्वस्त करते और सर्वथा निश्चिंत होकर रहने का निर्देश देते। उनके

देखने और कहने का तरीका इतना अद्‌भुत था कि मैं एक बार तो सब कुछ भूल जाती और मन ही मन संकल्प करती कि अब इस अध्याय को संपन्न कर दूंगी।

गंगाशहर से श्रीडूंगरगढ़ होते हुए आचार्यश्री मोमासर पहुंचे। तब तक मेरी अस्थिरता का दौर चलता रहा। मोमासर में एक दिन मैं कुछ अधिक व्यथित हो गई। मेरी उस व्यथा ने आचार्यश्री के मन को हिला दिया। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि एक कोमल कली को इस प्रकार कुचलना ठीक नहीं है। उस दिन उनकी आकृति पर विषाद की एक रेखा थी। मेरी आंखों ने उसको पकड़ लिया। मन इतना आहत हुआ कि उसे अभिव्यक्ति देने वाले शब्द नहीं हैं। उस दिन भी शब्द होंठों तक आकर रुक गए। मैं भारी मन से आवास-स्थल पर गई। मैंने अपनी डायरी में लिखा–'गुरुदेव जैसे चाहें, मेरा उपयोग करें। मैं उन्हें अपनी मुक्ति के लिए इस रूप में कभी बाध्य नहीं करूंगी।'

उस दिन मध्याह्न में मैं अपनी डायरी लेकर आचार्यश्री के पास गई। कुछ बोलकर निवेदन करने की तो संभावना ही क्षीण हो गई थी। मैंने डायरी उनके सामने रख दी। अनमने भावों से डायरी उठाकर उन्होंने पढ़ी। एक क्षण में चेहरे की आभा बदल गई। उसी समय उन्होंने अपनी डायरी खोलकर मुझे पढ़ाई। मैं अभिभूत हो गई। दोनों ओर से भाव-परिवर्तन की उस घटना ने एक नई घटना के जन्म को रोक दिया। आचार्यश्री की करुणा, वत्सलता, उदारता और अपनेपन की भावना से प्रवाहित धाराओं ने मुझे इतना भिगो दिया कि आंखें खुल गईं। मेरे सामने गुरु का माहात्म्य प्रकट हो गया। मेरे मन का सारा ताप-संताप भाप बनकर उड़ गया।

शिष्य के समर्पण का दुरुपयोग करने वाले गुरुओं की संसार में कमी नहीं है। ऐसे गुरुओं का मिलना दुर्लभ है, जो शिष्यों का संताप दूर करते हैं, उनके जीवन के हर मोड़ पर दीया जलाते हैं और सर्वव्यापी मंगल से दिशाओं को भर देते हैं। मेरे गुरुदेव अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी इस कोटि के गुरुओं से भी बहुत विलक्षण थे। उन्होंने अपने शिष्यों के जीवन को ही उजालों से नहीं भरा, पूरी मानवता का पथ उजालने के लिए

कभी नहीं मिटने वाली रोशनी बिछा दी। मुझ पर तो उनका अनंत उपकार रहा है। एक बिंदु को सिंधु से जोड़ने वाले, एक किरण को उजाले का इतिहास लिखने की प्रेरणा देने वाले और एक अनगढ़ पाषाण खंड को तराशकर उसमें एक आकृति उकेरने वाले वे महान चेतनाशिल्पी आज भी इस सृष्टि के कण-कण में परिस्पंदित हो रहे हैं।

17. एक शताब्दीपुरुष

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी को मैं एक महासूर्य के रूप में देखती हूं। सूर्य की दो भूमिकाएं मानी गई हैं–रोशनी और रवानी। वह गतिशील है। उसने कब चलना प्रारंभ किया और कब तक चलता रहेगा? इन सवालों के जवाब गणित की किसी भी पुस्तक में नहीं हैं। वह चलता हुआ दिखाई नहीं देता। फिर भी प्रातः और सायं उसकी उपस्थिति दो विपरीत छोरों पर रहती है। आकाश के जिस दिग्विभाग में वह उदित होता है, उसका नाम पूर्व दिशा है। जिस छोर पर वह आंखों से ओझल होता है, वह पश्चिम दिशा है।

सूर्य केवल गति ही करता तो मानव या प्राणी जाति का उपकारी नहीं होता। वह प्रकाश देता है, अंधेरे में डूबे हुए विश्व को प्रकाश से नहलाता है। उसके सहयोग से ही हमारी आंखें दृश्य पदार्थों को अपना विषय बनाती हैं। सूर्य अपना प्रकाश नहीं बांटता तो आंखों का कोई उपयोग ही नहीं हो पाता। सूर्य के पास प्रकाश है और ऊर्जा है। विज्ञान ने सौर ऊर्जा के दोहन की तकनीक विकसित की है। ऊर्जा के सहारे ऐसे कार्य निष्पादित किए जा रहे हैं, जिनके होने की कोई संभावना नहीं थी।

आश्वस्ति के केंद्र

आचार्यश्री तुलसी गति, प्रकाश और ऊर्जा के पर्यायवाची थे। उन्होंने पांव-पांव चलकर इस देश की धरती को मापा। वे जहां-जहां गए, हर वर्ग के लोग उनके संपर्क में आए। उन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की समस्याओं को खुली आंखों से देखा और खुले दिमाग से उनका समाधान खोजा। उन्होंने चिंतन के नए क्षितिज खोले। उनमें लकीर से हटकर चलने

का साहस था। उनका नेतृत्व घटनाओं के प्रवाह में बहने वाला नहीं था। वे हर घटना के रुख को मोड़ना जानते थे। उनके देदीप्यमान ललाट और चमकीली एवं प्रभावपूर्ण आंखों में जादुई सम्मोहन था। पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जो भी उनके संपर्क में आते, वे पूरी तरह से उनके होकर रह जाते थे। उनके रोम-रोम से झरने वाले वात्सल्य का परस पाकर पाषाण-दिल लोग भी पिघल जाते थे। उनके निकट बैठने वाले व्यक्ति ऐसा अनुभव करते मानो वे विशाल वटवृक्ष की शीतल छाया में आश्वस्त होकर विश्राम कर रहे हैं।

प्रभावी प्रवक्ता

आचार्यश्री कुशल प्रवचनकार थे। उनके प्रवचन का प्रतिपाद्य शब्दों से अधिक उनकी भावभंगिमा के द्वारा श्रोताओं के मन में उतरता था। यह क्षमता हर एक प्रवक्ता में नहीं मिलती। वक्ता की मुद्राओं और शब्दों में सामंजस्य स्थापित होने से वक्तृत्व जितना प्रभावी होता है, केवल विद्वत्ता से उतना प्रभाव नहीं हो पाता। आचार्यश्री का प्रवचन सुनकर एक प्रबुद्ध व्यक्ति ने कहा–'प्रवचन का ओजपूर्ण अर्थ बहुत तेजी से संप्रेषित होता है। संप्रेषण की प्रक्रिया देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई गली हुई धातु एक नमनीय आकृति में ढल रही है।' भिन्न-भिन्न परिवेश में जीने और विभिन्न भाषा बोलने वाले लाखों-लाखों लोगों के मन पर उनके प्रवचन की छाप है।

बात सन् 1960 की है। कलकत्ता से राजस्थान की यात्रा करते समय आचार्यश्री दिल्ली पहुंचे। दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में उनके सार्वजनिक अभिनंदन का कार्यक्रम था। सुप्रसिद्ध चित्रकर्त्री कुमारी एलिजाबेथ ब्रूनर उस कार्यक्रम में उपस्थित थी। वह आदि से अंत तक वहां बैठी रही। उसकी स्थिरता देखकर किसी को यह आभास ही नहीं हुआ कि वह हिन्दी नहीं जानती। आचार्यश्री उससे परिचित थे। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद उन्होंने एलिजाबेथ से कहा–'तुम हिन्दी नहीं समझती, फिर इतनी देर चुपचाप कैसे बैठी रहती हो?' वह बोली–'प्रेम की भाषा अलग ही होती है। मैं उसे समझती हूं, इसलिए घंटों-घंटों यहां बैठकर भी अघाती नहीं।'

वीतराग चेतना के प्रतीक

आचार्यश्री का आभामंडल जितना उज्ज्वल था, उतना ही आकर्षक था। उनके अवग्रह क्षेत्र में बैठने वाले लोगों को जिस अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति होती, वे उसे जीवनभर भूल नहीं पाते। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्ति उनकी सन्निधि पाकर इतने आह्लादित हो जाते कि एक बार तो अपनी समस्या को भूल-से जाते। मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। चढ़ाव के समय प्रायः सभी लोग अपनत्व दिखा सकते हैं, पर उतार के क्षणों में अपने भी पराए बन जाते हैं। चारों ओर से असहाय व्यक्ति का मनोबल क्षीण हो जाता है। आचार्यश्री ऐसे व्यक्तियों के लिए आलंबन थे। सघन निराशा के क्षणों में वे आशा के अमर आलोक बनकर व्यक्ति को उत्साह से भर देते थे।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व का एक विशिष्ट अंग था उनकी जिंदादिली। उनके अपने जीवन में भी अनेक ऐसे क्षण आए, जो धैर्य का बांध तोड़ने के लिए उत्कंधर थे, किंतु धैर्य की टूटन तो दूर, उसमें लचक तक नहीं आई। कुछ प्रसंगों में तो उनकी अविचल धृति ने सब लोगों को अभिभूत कर लिया। धर्मसंघ के सर्वोच्च अनुशास्ता होने के कारण उन्हें अनेक बार ऐसे निर्णय लेने पड़े, जिनसे पहले या पीछे व्यक्ति सहज नहीं रह सकता। उन प्रसंगों में आचार्यश्री की सहजता ने उनको स्थितप्रज्ञता के शिखर तक पहुंचा दिया। गंगापुर, सरदारशहर, कलकत्ता, रायपुर, चूरू, दिल्ली आदि क्षेत्रों में घटित घटनाएं स्मरणमात्र से कंपन पैदा कर देती हैं। उन घटनाओं की आचार्यश्री ने जिस तटस्थता के साथ समीक्षा की, वह बताती है कि उनकी चेतना वीतरागता की दिशा में अग्रसर थी।

धर्मक्रांति के पुरोधा

आचार्यश्री जैसे युगपुरुष काल के प्रलंब अंतराल से कभी-कभी युग को दिशाबोध देने के लिए आते हैं। जैन परंपरा में तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य होने पर भी उनका चिंतन कभी उस सीमित घेरे में नहीं रहा। वे समग्र मानव जाति के बारे में सोचते थे और वैश्विक समस्या का समाधान खोजने में तत्पर रहते थे। धार्मिक जगत की समस्याओं को समाहित करने

के लिए उन्होंने धर्मक्रांति के सूत्र दिए। धर्म के साथ प्रबुद्धता की बात जोड़कर उन्होंने अंधश्रद्धा के साथ अपनी असहमति प्रकट कर दी। धर्म को प्रयोगभूमि बनाकर उन्होंने धार्मिक कुरूढ़ियों पर सीधा प्रहार किया। वर्तमान जीवन की पवित्रता को धर्म की निष्पत्ति बताकर उन्होंने नरक के भय एवं स्वर्ग के प्रलोभन से किए जाने वाले धर्म की धारणा बदल दी। भोजन करने पर भी भूख शांत न हो, उस भोजन की कोई सार्थकता नहीं होती। धर्म का आचरण करने पर भी अशांति की समस्या का समाधान न हो, वह धर्म अपनी उपयोगिता के आगे प्रश्नचिह्न लगा देता है। यह विचार देकर उन्होंने धर्म की समाधायक भूमिका से जनता को अवगत करा दिया। धर्म के नाम पर होने वाली लड़ाइयों के इतिहास को बदलने के लिए उन्होंने धर्म के उस स्वरूप को उजागर किया, जो सब धर्मों के प्रति सद्भावना का प्रेरक था।

अंधश्रद्धा और शुष्क तर्कवाद–दोनों अतिवादों से दूर रहकर उन्होंने धर्म को यथार्थ का ठोस धरातल दिया। उनके धार्मिक प्रवचन सुनकर अपने आपको नास्तिक मानने वाले लोगों ने भी आंतरिक आस्था के साथ उनके चरण छूकर धर्म को अपनी सहमति दी। आचार्यश्री की विचार-सरणि ने लाखों-लाखों लोगों के चिंतन को नई दिशा देकर एक संत के रूप में अपनी उपस्थिति का अहसास करा दिया।

आज विश्व जिस कगार पर खड़ा है, उसे आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष के मार्गदर्शन की अपेक्षा है। काश! इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करते समय इस युग को उनका सीधा दिशादर्शन उपलब्ध हो पाता, किंतु बीसवीं सदी का आखिरी दशक अपने इतिहास के एक पृष्ठ में उस युगपुरुष के महाप्रयाण की गाथा लिख गया। एक दशक पूरा हो गया, फिर भी उस घटना पर न आंखों को विश्वास हो रहा है और न कानों को। आंखें उस महापुरुष की छवि को अपने भीतर सहेजकर रखने के लिए आतुर हैं और कान पदचाप सुनने के लिए उत्सुक हैं। जन-जन की यह आतुरता और उत्सुकता आचार्यश्री तुलसी तक पहुंचे और वे अपने नए लोक से ही इस दुनिया तक कोई संदेश पहुंचाते रहें। गति, प्रकाश और ऊर्जा के प्रतिरूप उस प्रतीकपुरुष के सतत स्मरणीय स्वरूप को श्रद्धासिक्त प्रणाम।

18. अभिवंदना युगपुरुष की

इतिहासकारों का मंतव्य है कि इतिहास कभी आखिरी बार नहीं लिखा जाता। कभी जानकारी के अभाव में और कभी जानते हुए भी कुछ छूट जाता है। इतिहास-लेखक समय-समय पर उसमें कुछ जोड़ते जाते हैं, फिर भी वह पूर्णता के शिखर को नहीं छू पाता।

आचार्य तुलसी बीसवीं सदी के महान संत थे। उनका जीवन अपने आपमें एक इतिहास है। उनके बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, फिर भी बहुत कुछ छूटा हुआ है। **पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते**–इस उपनिषद वाक्य के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि उस महापुरुष के संबंध में जितना लिखा गया है, उससे बहुत अधिक लिखना बाकी है। उनके कर्तृत्व की एक-एक कहानी पर पूरा उपन्यास लिखा जा सकता है बशर्ते कि कोई लेखक अपनी कई जिंदगियां इसी काम के लिए समर्पित कर दे।

ज्योतिष और शकुन के संदर्भ में

तेरापंथ के आचार्य के सामने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं। उनमें एक सर्वाधिक महत्त्व का काम है अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन। परम पूज्य कालूगणी तेरापंथ के आठवें आचार्य थे। वे वि.सं. 1966 में आचार्य बने। मुनि मगनलालजी (मंत्री मुनि) कालूगणी के पूर्व दीक्षित थे, पर प्रारंभ से ही उनके साथ-साथ रहे और कई दृष्टियों से उनके अभिन्न साथी थे। संघीय हित-संपादन में उनका चिंतन व परामर्श बहुत उपयोगी होता था।

वि.सं. 1980 का प्रसंग है। सुजानगढ़ के श्रावक प्रतापमलजी दूगड़ (मुहतो) आचार्यश्री कालूरामजी के दर्शन करने आए। वे अपने समय के

ख्यातिप्राप्त ज्योतिषी थे। ज्योतिष-शास्त्र-विषयक वार्तालाप के संदर्भ में मुनि मगनलालजी ने पूज्य कालूगणी की जन्मकुंडली उनके समक्ष रखते हुए कहा–ज्योतिषीजी! हमने सुना है कि आपने जोधपुर-महाराजा को भावी राजकुमार बताया था। जब वे लंदन जा रहे थे, तब आपने कहा था कि महाराजा के महाराजकुमार होगा और वह हो भी गया। हमें भी एक महाराजकुमार चाहिए। इस कुंडली के आधार पर बतलाइए कि वे कौन होंगे?

उक्त प्रश्न के उत्तर में प्रतापमलजी ने क्या कहा, यह शोध का विषय है, पर इससे यह बात स्पष्ट होती है कि वि.सं. 1980-81 तक कालूगणी भावी व्यवस्था को लेकर निश्चिंत नहीं हो गए थे। वि.सं. 1982 में कालूगणी लाडनूं पधारे। शहर में प्रवेश करते समय उन्हें दाहिनी ओर काले नाग (एक मत के अनुसार बछड़े को दूध पिलाती गाय) का शकुन हुआ। उसे शुभ रूप से स्वीकार किया गया, पर उस समय उसके फल के बारे में शायद नहीं सोचा गया था। उसी प्रवास-काल में जब आकस्मिक रूप में बालक तुलसी की दीक्षा हुई तब संभवतः कालूगणी का ध्यान उस शकुन पर केंद्रित हुआ होगा। इसका संवादी प्रमाण अग्रांकित है।

कुछ समय बाद मुनि चौथमलजी (जावद) ने कालूगणी के समक्ष स्वप्न-शास्त्र की चर्चा करते हुए कहा–'आजकल शकुन की यथार्थता देखने में कम आती है।' यह बात सुनकर कालूगणी अविलंब बोले–'ऐसा क्यों कहते हो? लाडनूं आते समय जो शकुन हुए थे, वे पूर्ण चरितार्थ हो गए। वहां तुलछू की अच्छी दीक्षा हो गई। और क्या चाहिए?'

मुनि तुलसी के संबंध में कालूगणी ने कितने अहोभाव और आत्मविश्वास के साथ अपने उद्‌गार प्रकट किए थे। उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने बालक तुलसी को निकटता से देखा या दीक्षित किया, संभवतः उसी समय वे भविष्य के बारे में निश्चिंत हो गए थे, अन्यथा एक नवदीक्षित मुनि को लक्ष्य कर इतनी बड़ी बात कैसे कही जा सकती है। बचपन में ही जो इतने विलक्षण व्यक्तित्व से संपन्न थे, उस व्यक्तित्व की व्याख्या शब्दों में करना कठिन ही नहीं, असंभव है। उस

असंभव को संभव कर दिखाने वाला एक ही वाक्य है–'अकथ कथा गुरुदेव की।' असंभव को संभव करने में अपनी अक्षमता का अनुभव करते हुए उस अपरिमेय और अनुपमेय व्यक्तित्व के प्रति अंतहीन प्रणतियां निवेदन करना ही मुझे अभीष्ट है।

बयासी वर्ष के आचार्य

आचार्य तुलसी ग्यारह वर्ष की अवस्था पूरी कर साधु बने। साधु जीवन के लगभग ग्यारह वर्ष उन्होंने अपने गुरु के वरद साये में बिताए। उनकी संयम-यात्रा का ग्यारहवां वर्ष चल रहा था। उनके सामने मुख्य रूप से दो ही कार्यक्षेत्र थे–अध्ययन और अध्यापन। अपने बुद्धिबल और नैसर्गिक अध्यापन कौशल से उन्होंने इन दोनों क्षेत्रों में अपनी अर्हता साबित की। पार्ट टाइम जॉब की तरह उन्होंने अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट कुछ नए कार्य हाथ में लिए और बहुत कम समय में उन्हें संपादित कर अपनी क्षमता का परिचय दे दिया। लक्ष्य के प्रति निष्ठा, गुरु के प्रति समर्पण और पुरुषार्थ के प्रति विश्वास–इस त्रिपदी ने उनको उच्चता के उस शिखर तक पहुंचा दिया, जहां से उनके व्यक्तित्व का आलोक चारों दिशाओं में फैलने लगा।

तेरापंथ के आठवें अधिशास्ता आचार्यश्री कालू अपने शिष्य की अलौकिक आभा देखकर आश्वस्त हुए। उन्होंने बाईस वर्षीय युवा शिष्य के सबल कंधों पर भरोसा कर मुनि तुलसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। आचार्य के लिए करणीय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित कर कालूगणी निश्चिंत हो गए। चार दिन बाद ही उन्होंने स्वर्गलोक की यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया। युवाचार्य तुलसी आचार्य पद पर अभिसिक्त हो गए।

तेरापंथ के इतिहास में इतनी छोटी अवस्था में संघ का दायित्व संभालने वाले वे पहले आचार्य थे। उनकी प्रशासनिक क्षमता नैसर्गिक थी अथवा पूज्य कालूगणी ने उनका इस रूप में निर्माण किया, यह निर्णय करना कठिन है, पर इतना तो निश्चित है कि उनके शासनकाल को तेरापंथ के इतिहास का स्वर्णिमकाल माना जा सकता है।

इतिहास का एक अनूठा पृष्ठ

आचार्य तुलसी सन् 1936, गंगापुर-चातुर्मास में आचार्य बने। गंगापुर से विहार हो गया। अन्यान्य क्षेत्रों में चातुर्मास करने वाले बहिर्विहारी साधुओं का आगमन शुरू हुआ। छिहत्तर साधु दीक्षा-पर्याय में आचार्यश्री से ज्येष्ठ थे। उस समय की परंपरा के अनुसार दीक्षा-ज्येष्ठ साधु आचार्य के रास्ते में मिलने पर बैठकर वंदना नहीं करते थे। रत्नाधिक (दीक्षा-ज्येष्ठ) साधुओं ने आत्म-प्रेरणा से चिंतन किया–वर्तमान में आचार्यश्री से छोटे साधुओं की संख्या कम है और बड़े साधुओं की संख्या अधिक है। हमारे संघ का प्रोटोकॉल हम जानते हैं, अन्य लोग नहीं जानते। आचार्यश्री मार्ग में मिलें और हम बड़े संत बैठकर वंदना न करें तो दर्शकों पर कोई खास असर नहीं होगा। आचार्य तो संघ के सिरमौर होते हैं। हम मार्ग में बैठकर वंदना करें या न करें, उनके कोई फर्क नहीं पड़ेगा, पर इससे हमारा बड़प्पन उजागर होगा और संघ की गरिमा बढ़ेगी।

संघ के कुछ साधुओं ने मिलकर चिंतन किया, चिंतन निर्णय में बदला और उसका क्रियान्वयन हो गया। ऐसे प्रसंगों में पहल करना साहस की बात है, फिर तो कोई भी प्रवृत्ति इतनी सहज हो जाती है मानो वह दीर्घकाल से इसी रूप में चली आ रही है।

जिस दिन दीक्षा-ज्येष्ठ साधुओं ने पहली बार मार्ग में बैठकर आचार्यश्री को वंदना की, कई साधुओं को आश्चर्य हुआ, पर इसकी कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं हुई, बल्कि बहुत साधुओं ने इसका औचित्य स्वीकार किया। उसके बाद तो सबके लिए पथ प्रशस्त हो गया। बड़े साधु आते रहे और इस नई परंपरा का अनुगमन करते रहे। इस उपक्रम से तेरापंथ धर्मसंघ का गौरव तो बढ़ा ही, उसके साथ-साथ अनायास ही अन्य जैन-संप्रदायों में आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व भी प्रभावी बन गया। हालांकि आचार्यश्री का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था, फिर भी अन्य संप्रदायों के लोग उनसे परिचित नहीं हो पाए थे। पर जब उन्होंने यह देखा कि तेरापंथ संघ के बड़े-छोटे सभी साधु अपने आचार्य के प्रति इतना सम्मान एवं विनय का भाव रखते हैं तो वे अभिभूत हो गए।

जैसे कालूगणी, वैसे ही आप

चातुर्मास की संपन्नता के बाद आचार्यश्री गंगापुर से विहार करते हुए पुर पहुंचे। मुनि नथमलजी (रीछेड़) आदि अनेक अग्रगण्य साधु भी अपने-अपने चातुर्मासिक क्षेत्रों से विहार कर पुर पहुंचे। वे दीक्षा-पर्याय में आचार्यश्री से ज्येष्ठ थे। आचार्यश्री ने पट्ट से नीचे उतर कर उन्हें वंदना की। मुनि नथमलजी ने आचार्यश्री को वंदना की और उनको अपने दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया। आचार्यश्री बोले–'मोटा पुरुष! यह आप क्या कर रहे हैं?' मुनि नथमलजी ने मुस्कुराते हुए कहा–'आप हमारे बालक आचार्य हैं। आपकी वर्धापना हमारा अधिकार है। हमारे लिए जैसे कालूगणी थे, वैसे ही आप हैं। हमारा सौभाग्य है कि कालूगणी ने आप जैसे होनहार उत्तराधिकारी का चयन किया।'

दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ, अनुभव में वृद्ध और संघ में प्रतिष्ठित साधुओं ने जिस सहजता और विनम्रता से नवोदित आचार्य की अभिवंदना की, देखने वाले और सुनने वाले अवाक् रह गए। आचार्य भिक्षु द्वारा निर्मित संविधान का तो यह प्रभाव था ही, आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व की विलक्षणता भी थी, जिससे धर्मसंघ के प्रथम कोटि के साधुओं से भी आचार्यश्री को इतनी श्रद्धा और बहुमान प्राप्त हुआ।

शूलों का घर और चींपड़ी

आइजन हॉवर अमेरिका के राष्ट्रपति बने। नव निर्वाचित राष्ट्रपति को जनता की ओर से अनेक उपहार मिले। राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद एक दिन उन्हें कुछ विशेष उपहार दिखाए जा रहे थे। उनमें एक विचित्र उपहार था झाड़ू। उसे उलट-पलट कर देखा गया तो एक चिट मिली। राष्ट्रपति महोदय ने उस मुड़ी-तुड़ी चिट को खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा हुआ था–प्रिय राष्ट्रपति महोदय! चुनाव से पहले आपने अपनी चुनाव-सभाओं में कहा था–'यदि आप मुझे देश की सेवा करने का अवसर प्रदान करेंगे तो मैं सबसे पहले प्रशासन के भ्रष्टाचार को दूर करूंगा, इसमें समाविष्ट गंदगी की सफाई करूंगा।' यह झाड़ू आपको अपने संकल्प की निरंतर याद दिलाता रहेगा।

अमेरिका के किस नागरिक ने राष्ट्रपतिजी को ऐसा उपहार दिया, यह इतिहास या शोध का विषय हो सकता है, पर इतना तो स्पष्ट है कि उपहारकर्ता की अपनी सोच थी और वह सार्थक भी थी।

आचार्य तुलसी गंगापुर (ग्वालियर स्टेट) में आचार्य बने। चातुर्मास की संपन्नता के बाद वे ब्यावर में मर्यादा-महोत्सव का आयोजन करके थली-संभाग में पधारे। थली के एक छोटे-से गांव चाड़वास में उस समय मुनि छबीलजी प्रवास कर रहे थे। उन्हें प्रथम बार आचार्यश्री के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने एक शूलों का घर और एक चींपड़ी आचार्यश्री को भेंट की। दर्शकों की प्रश्नायित आंखें मुनि छबीलजी पर केंद्रित हो गईं। संघ के महान आचार्य को यह साधारण-सी भेंट! क्या इसका भी कोई रहस्य है?

मुनि छबीलजी की भेंट सुचिंतित थी। उन्होंने विनम्रता के साथ निवेदन किया–'आर्यवर! आपके पथ में कांटे बिखरे हुए हैं। वे चरणों में चुभते रहेंगे। आप उन्हें निकालते रहें और निरंतर आगे बढ़ते रहें।'

एक कहावत है–आचार्य का दायित्व वहन करना कांटों का ताज पहनना है। ऊपर से कांटों की चुभन और नीचे भी कांटा चुभने का खतरा। इन कांटों और खतरों के बीच अविचल रहकर एक बड़े संघ का नेतृत्व करना वस्तुतः बहुत बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को वे ही झेल सकते हैं, जो आत्मबली और साधनाबली होते हैं, जिनका प्रशासन-कौशल विशिष्ट होता है, जो परिस्थितियों के सामने घुटने टेकने की बात ही नहीं सोचते तथा विकास के मार्ग में उपस्थित हर अवरोध को सीढ़ी बनाकर आगे बढ़ जाते हैं।

कैसे संभाला सहजता से दायित्व

आचार्य तुलसी ने आचार्यपद का दायित्व बहुत सहजता से संभाल लिया। इतनी छोटी उम्र में एक बड़े संघ की जिम्मेदारी संभालते समय वे न सहमे, न झिझके और न चिंतित हुए। एक बार मेरे मन की धरती पर एक सवाल उग आया–दायित्वग्रहण के समय आचार्य तुलसी की मनःस्थिति

इतनी संतुलित कैसे रह सकी? इस सवाल पर विचार करते समय मुझे समाधान भी मिला। समाधान के दो बिंदु यहां प्रस्तुत हैं–

1. पूज्य कालूगणी मुनि तुलसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने के बाद चार दिन इस दुनिया में रहे। चार दिनों में उन्होंने अनेक बार युवाचार्य तुलसी को उनके करणीय कार्यों के बारे में जानकारी दी। एक प्रसंग में उन्होंने कहा–'मुझे विश्वास है कि तू जो कुछ करेगा, ठीक ही करेगा। तुमसे कभी ऐसा काम नहीं होगा, जो तुम्हारी छोटी अवस्था का सूचक हो।'

2. आचार्य तुलसी की यह अवधारणा थी कि तेरापंथ के आचार्य चक्रवर्ती सम्राट होते हैं। जिस प्रकार भरत क्षेत्र के छह खंडों में चक्रवर्ती की आज्ञा अखंड रूप में प्रवर्तित होती है, उसी प्रकार तेरापंथ के आचार्य की आज्ञा का पालन होता है। उनकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। वे जिस दिशा में संघ को गतिशील बनाना चाहें, आसानी से बना सकते हैं।

एक ओर गुरु का आशीर्वाद, दूसरी ओर एक पुष्ट अवधारणा। **द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति**–कोई भी तथ्य दो बार निरूपित होने के बाद पक्का हो जाता है। हालांकि आचार्यश्री की अपनी अवधारणा आचार्य बनने के थोड़े समय बाद ही बदल गई थी, फिर भी प्रारंभ में उनमें जो आत्मविश्वास जागृत हो गया, वह उनके प्रशासन-कौशल की मजबूत आधारशिला बन गया।

विलक्षण व्यक्तित्व के धनी

आचार्य तुलसी अपनी दक्षिण-यात्रा के दौरान (वि.सं. 2025) सिंधनूर (कर्नाटक) पधारे। श्रावक राणमलजी जीरावला वहां लिंगायतों के गुरु, प्रसिद्ध हस्तरेखाविद् काबसइया स्वामी से मिले। वे आचार्यश्री का फोटो अपने साथ ले गए थे। उन्होंने वह फोटो उनके सामने प्रस्तुत करते हुए कहा–'स्वामीजी! ये हमारे गुरु हैं। आजकल यहां आए हुए हैं। मैं चाहता हूं कि आप इनसे मिलें। स्वामीजी आचार्यश्री का फोटो देखते ही मुग्ध हो गए।

उनकी दृष्टि कुछ क्षणों के लिए फोटो पर केंद्रित हो गई। वे बोले–'इनका व्यक्तित्व बड़ा विलक्षण प्रतीत होता है। मैं इनके दर्शन जरूर करूंगा।' कुछ समय बाद उन्होंने कहा–'इनके पैर में पद्मरेखा है। ये जो भी काम करेंगे, उसमें सफलता मिलेगी। इनके प्रयत्न से जैनधर्म का नाम अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र तक पहुंचेगा और धर्म में नई क्रांति घटित होगी।'

आचार्य तुलसी के अहमदाबाद-प्रवास में 8 अप्रैल, 1983 के दिन प्रवचन-सभा में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध सामुद्रिक डॉ. यशवन्त त्रिवेदी ने कहा–'इस परिवार के एक सदस्य ने पूरी गंभीरता के साथ मुझे बताया कि हमारे देश में तीन-चार व्यक्तियों के मस्तिष्क में चक्रवर्ती की रेखा है, उनमें एक आचार्य तुलसी हैं।'

आचार्य तुलसी के संपर्क में आने वाले परिचित एवं अपरिचित व्यक्तियों में अनेक व्यक्ति ऐसा अनुभव करते हैं कि आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कोई विलक्षणता अवश्य है, जो व्यक्ति को प्रथम दर्शन में ही प्रभावित कर लेती है। कुछ व्यक्ति अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति दे पाते हैं और कुछ व्यक्ति उसे शब्द देने की अपेक्षा ही नहीं समझते।

एक भविष्यवाणी, जो यों सच हुई

सन् 1958 की बात है। कानपुर चातुर्मास से पहले आचार्य तुलसी लखनऊ पधारे। वहां की एक अच्छी एरिया है 'अहियागंज'। आचार्यश्री ने उस एरिया में जैन-तत्त्व-दर्शन पर प्रवचन किया। वहां एक प्रज्ञाचक्षु पंडितजी रहते थे, जो भगतजी के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्हें ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। वे आचार्यश्री का प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उस प्रवास के दौरान साध्वियों से उनकी मुलाकात हुई। बातचीत के दौरान पंडितजी बोले–'जैन आचार्यों की परंपरा में आचार्य तुलसी महान यशस्वी और प्रतापी आचार्य हैं। इनके शासन-काल में जैनधर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार होगा। इनकी आवाज समुद्रों पार पहुंचेगी।'

पंडितजी की बात सुनकर साध्वियों के मन में जिज्ञासा उभरी। उन्होंने प्रश्न किया–'क्या आचार्यश्री विदेश-यात्रा करेंगे?' पंडितजी बोले–

'आचार्यश्री स्वयं तो विदेश नहीं जाएंगे, किंतु अपने पुतले विदेश में भेजेंगे। उनके माध्यम से विदेशों में जैनधर्म पहुंचेगा। एक दिन ऐसा आएगा, जब विदेशी लोग आचार्यश्री के शिष्य भी बनेंगे।'

ज्योतिर्विद्या का अपना महत्त्व है, पर ज्योतिर्विदों द्वारा कथित सब बातें सही ही हों, यह जरूरी नहीं है। इस अवधारणा के आधार पर साध्वियों को पंडितजी की बात कल्पना जैसी लगी। उस कल्पना के साथ अपनी कल्पना को संयोजित करते हुए उन्होंने सोचा–आचार्यश्री योग-साधना द्वारा विशिष्ट लब्धि या शक्ति से संपन्न हो जाएं और पुतलों का निर्माण करें तो ज्योतिषी का कथन सही हो सकता है, किंतु लब्धि का प्रयोग तो शास्त्र-सम्मत नहीं है। इस स्थिति में ज्योतिषी की भविष्यवाणी....।

सन् 1980 में आचार्य तुलसी ने जैन विश्वभारती की सुधर्मा सभा में विलक्षण दीक्षा के नाम से एक नई श्रेणी–समणश्रेणी का सूत्रपात किया। यह श्रेणी आचार्यश्री की स्वोपज्ञ कृति है। इस श्रेणी में सर्वप्रथम दीक्षित छह समणियों में से दो समणियां–समणी स्मितप्रज्ञा और समणी मधुरप्रज्ञा सन् 1982 में आचार्यश्री का संदेश लेकर उनके प्रतिनिधि के रूप में प्रथम बार विदेश (लंदन) पहुंचीं। जैनधर्म, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान आदि की चर्चा विदेशी लोगों में आकर्षण का केंद्र बनी। आचार्यश्री के सान्निध्य में आयोजित अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में विदेशी संभागियों की अच्छी उपस्थिति रही। जापान, ताईवान आदि देशों से प्रेक्षाध्यान के जिज्ञासु विदेशियों का एक दल लाडनूं आया। उस दल के सदस्यों ने प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लिया, प्रेक्षाध्यान की दीक्षा ली और आचार्य तुलसी को गुरु रूप में स्वीकार किया।

समणश्रेणी की विदेश-यात्राओं का सिलसिला अब भी चल रहा है। प्रतिवर्ष यात्राएं हो रही हैं। अमेरिका और लंदन में स्थायी सेंटर बन गए। विदेशों में रहने वाले भारतीय लोग वहां नियमित रूप से लाभान्वित हो रहे हैं। समय-समय पर विदेशी लोगों की क्लॉसेज भी चलती हैं। मियामी की फ्लोरिडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी में एशियन रिलिजन, योग एण्ड मेडिटेशन, संस्कृत लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर आदि सब्जेक्ट्स समणीजी के द्वारा पढ़ाए जा रहे हैं।

समणश्रेणी में दीक्षित कुछ समणों ने भी विदेशों में काम किया है। समणीवृन्द की यात्राएं तो हो ही रही हैं। समण-समणियों को आचार्य तुलसी के पुतलों के रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो प्रज्ञाचक्षु पंडितजी द्वारा की गई भविष्यवाणी की सत्यता प्रमाणित हो गई, ऐसा कहा जा सकता है।

युगद्रष्टा की अभिवंदना का एक तरीका

इस दुनिया में कोई भी महापुरुष युगद्रष्टा या युगस्रष्टा के रूप में प्रतिष्ठित होता है, वह उसकी दीर्घकालिक साधना और तपस्या का फलित है। जब वह युग-निर्माण की बात सोचता है और उस दिशा में कुछ कार्य प्रारंभ करता है तो वर्तमान उसका आलोचक बन जाता है। आलोचनाओं का दौर कभी-कभी चिंतन को कुंठित कर देता है और कार्य की दिशा बदल जाती है। किंतु जिसके मन में यह विश्वास होता है कि सत्प्रयत्न का परिणाम निश्चित है, वह अपने चिंतन एवं निर्णय पर स्थिर रहता है और देर-सबेर मंजिल तक पहुंच जाता है।

आचार्यश्री ने सबसे पहले अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया। व्यक्तित्व-निर्माण की योजना कुछ व्यापक बनी और उन्होंने अपने परिपार्श्व से अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व-निर्माण का लक्ष्य बना लिया। इस लक्ष्य को साधते समय ही उनको और बड़ा दायित्व मिल गया। उस दायित्व को वहन करते हुए अपने अनुशासन में रहने वाले धर्मसंघ के विकास का ही नहीं, पूरी मानव जाति के विकास का सपना देखा।

आचार्यश्री ने अपने इस भव्य और दिव्य स्वप्न को साकार करने के उद्देश्य से अपना पूरा जीवन खपा दिया। उनके कर्तृत्व को जानने-पहचानने वाले लोग उन्हें एक युगद्रष्टा महापुरुष के रूप में स्वीकार करते हैं, पर इस ऊंचाई तक पहुंचने के लिए आचार्यश्री ने जो पुरुषार्थ किया है, जो तप तपा है और जो कष्ट झेले हैं, उन सबको ध्यान में रखकर उनके मिशन को आगे बढ़ाने का यत्किंचित प्रयास करना भी उनके कर्तृत्व की अभिवंदना का एक सुंदर तरीका हो सकता है।

19. उपमातीत व्यक्तित्व

जैन विश्वभारती का परिसर। सुधर्मा सभा का भव्य स्थान। मंचासीन दीप्तिमान महापुरुष। चौड़ा ललाट, चमकीली आंखें, लंबे कान, गौरवर्ण, तेजस्वी आभामंडल। प्रथम नजर में ही चित्त में समा जाने वाला व्यक्तित्व। कितना विलक्षण है यह महामानव?

मन के एक कोने में उभरी जिज्ञासा ने मस्तिष्क को झकझोरा। बचपन आंखों के सामने आ गया। ईस्वी सन् 1948 का समय। तेरापंथ के अधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी का लाडनूं प्रवास। मुझे अपनी मां का आदेश मिला–'गुरुदेव विराज रहे हैं। गुरुमंत्र लेकर आओ।' उछलती-कूदती घर से निकली। गुरुदेव के प्रवास-स्थल पर पहुंची। संध्या का समय था। गुरुदेव कुछ आवश्यक कागजात देख रहे थे। मैंने इसकी परवाह नहीं की। सामने जाकर खड़ी हो गई और बोली–'मुझे गुरुधारणा करा दो।'

गुरुदेव ने अपनी स्नेहिल नजरें ऊपर उठाईं। उपपात में आसीन एक मुनि को निर्देश दिया–'इसे गुरुधारणा करा दो।' गुरुदेव पुनः पत्र देखने में लीन हो गए। मेरी आशा पर तुषारापात हो गया। मैंने सोचा–गुरु के पास से जो मंत्र लेना है, वह अन्य किसी से क्यों लूं? मेरी हमउम्र कुछ अन्य कन्याएं साथ थीं। उन्हें वहीं छोड़ मैं भाग गई। घर जाकर मां को बताया कि आज तो गुरुमंत्र नहीं मिला।

कुछ दिन बीते। प्रातःकाल के समय गुरुदेव के प्रवास-स्थल पर पहुंच गई। गुरुदेव प्रसन्न मुद्रा में विराजमान थे। गुरुमंत्र देने का अनुरोध किया। काम बन गया। गुरुमंत्र मिला। पूरे शरीर में सिहरन-सी दौड़ गई। अजीब अनुभूति हुई। शब्दों से ही नहीं, पूरे मन से आचार्यश्री तुलसी को गुरु रूप

में स्वीकार कर लिया। उसके बाद जब कभी साक्षात्कार का मौका मिला, अनायास ही आस्था घनीभूत होती गई।

कलाकार के हाथ चढ़ा पाषाण

ईस्वी सन् 1960 का वर्ष। मेदपाट की धरा। केलवा गांव। तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह का ऐतिहासिक अवसर। गुरुदेव ने आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन मेरे जीवन को रूपांतरित कर दिया। बारह वर्ष पहले उन्होंने सम्यक्त्व रत्न प्रदान किया था। बारह वर्ष बाद मुझे संयम रत्न मिला। उस समय के आनंद को अभिव्यक्ति देने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं है। गूंगा क्या बतलाए गुड़ का स्वाद। साधु-जीवन का स्वाद लेने में स्वयं को भूल गई। अपने बारे में सोचना छूट गया। गुरु का निर्देश ही मेरी नई जीवन-शैली का आधार बन गया।

एक अनगढ़ पाषाणखंड कलाकार के हाथ चढ़ गया। कलाकार ने उसे तराशना शुरू किया। तराशने-तराशने में ग्यारह वर्ष बीत गए। वह पाषाणखंड एक बुत बन गया, पर प्राणप्रतिष्ठा नहीं हुई। कलाकार उसे और तराशना चाहता था, पर नियति ने उसकी दिशा बदल दी।

नाम तुम्हारा, काम मेरा

ईस्वी सन् 1972 का वर्ष। गंगाशहर का समवसरण-स्थल। मर्यादा-महोत्सव का समय। पट्ट पर आसीन गुरुदेव। दाएं-बाएं साधु-साध्वियों का विशाल परिवार। हजारों-हजारों लोगों की उपस्थिति। वातावरण में कुतूहल, उत्सुकता और जिज्ञासा। कई हजार आंखें गुरुदेव की दो आंखों पर केंद्रित। उत्कंधर मुद्राएं। सहसा गुरुदेव का आह्वान सुनाई दिया–'कनकप्रभा! आगे आओ!' अपना नाम सुनकर मैं हतप्रभ-सी रह गई। लगभग साध्वियों से पीछे अंतिम की दो-चार पंक्तियों में बैठी मैं दिग्मूढ़ बन गई। साध्वियों ने मुझे आगे जाने का रास्ता दिखाया। जैसे-तैसे आगे पहुंची। गुरुदेव ने निर्देश दिया–'खड़ी रहो।'

मैं गुरुदेव के सामने खड़ी हो गई। गुरुदेव ने एक पत्र निकाला, उसे पढ़ा और साध्वीप्रमुखा का दायित्व दे दिया। मैं निश्चेतन-सी होकर बैठ

गई। न हिली, न डुली। लगभग तीन घंटे तक वज्रासन की मुद्रा में बैठी रही। कार्यक्रम संपन्न हुआ। गुरुदेव अपने प्रवास-स्थल पर पधारे। मुझे भी वहां पहुंचने का निर्देश मिला। मैं यंत्र-चालित-सी गुरु-चरणों का अनुगमन करती हुई वहां पहुंची। मैंने हिम्मत जुटाकर निवेदन किया–'गुरुदेव! व्यवस्था और प्रशासन, दोनों दृष्टियों से अबोध मैं क्या कर पाऊंगी? आप किसी योग्य और अनुभवी साध्वी को यह जिम्मेदारी सौंपने की कृपा करें।'

गुरुदेव ने मेरे निवेदन को ध्यान से सुना। गुरुदेव मुझे डांट सकते थे कि उनके काम में हस्तक्षेप करने वाली मैं कौन होती हूं, पर उन्होंने असीम वात्सल्य बरसाते हुए कहा–'डरो मत! तुम्हारा केवल नाम है, काम तो मैं स्वयं करूंगा।' बहुत-कुछ कहना चाहकर भी मैं बोल नहीं पाई। शिष्य को जिस क्षण गुरु का इतना असाधारण कृपा भाव मिलता है, वह अनन्य बन जाता है। जिस साधारण साध्वी का संघ के अधिकतम साधु-साध्वियों से पूरा परिचय भी नहीं था, उसको गुरु ने अपने बलबूते पर प्रथम पंक्ति में खड़ा कर दिया।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग

काम छोटा हो या बड़ा, साहित्य-निर्माण का हो या व्यक्ति-निर्माण का, पूर्णता से हो, यह गुरुदेव को अभीष्ट था। उन्होंने मेरे निर्माण का लक्ष्य बनाया और मुझे अपने निर्णय के अनुरूप ढाला। इसमें उनको कितना श्रम करना पड़ा और कितने प्रयोग करने पड़े, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे प्रशासन-कार्य का ककहरा सिखाना शुरू किया। जब तक उस कार्य के साथ मेरा मन नहीं जुड़ा, वे मुझे मनोवैज्ञानिक तरीकों से समझाते रहे।

किसी साध्वी या श्राविका के साथ बातचीत करने की मेरी न तो आदत थी और न इसमें मेरी रुचि ही थी। एक दिन गुरुदेव ने कहा–'कनकप्रभा! मैं जानता हूं कि व्यापक संपर्क और वार्तालाप में तुम्हारी अभिरुचि नहीं है, पर प्रारंभ में जो प्रभाव पड़ता है, वह जीवनभर काम करता है। तुम एक-दो वर्ष इस दृष्टि से ध्यान दो, साध्वियों से खुलकर बातचीत करो,

श्रावक-श्राविकाओं से परिचय बढ़ाओ। उसके बाद तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा करना।'

गुरुदेव ने उक्त बात क्या सोचकर कही थी, पता नहीं, पर उसका असर इतना हुआ कि बातचीत करना मेरी दिनचर्या का अंग बन गया। इस रूप में वे मुझे ढालते रहे और जो-जो कार्य मुझसे करवाने होते, करवाते गए। यही कारण है कि शुरुआती वर्षों में तो मैं मात्र एक मशीन बनकर रही, जिसका संचालन गुरुदेव स्वयं करते थे। उनका यह संकल्प था कि चाहे जैसे भी हो, मुझे इस साध्वी को शक्तिसंपन्न बनाना है। गुरुदेव के संकल्प की ही यह ताकत थी कि मैं कुछ ही वर्षों में अनेक कार्यों के संपादन में आत्मनिर्भर बनती गई।

व्यक्ति-निर्माण की लंबी शृंखला

साध्वीप्रमुखा का दायित्व संभालने के बाद प्रायः प्रतिदिन ही मुझे गुरुदेव के उपपात में बैठने का मौका मिला। मैंने यह अनुभव किया कि गुरुदेव केवल मेरे निर्माण के लिए ही कृतसंकल्प नहीं हैं, वे एक साथ अनेक व्यक्तित्वों के निर्माण ही नहीं, उनको संघ/समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिए सलक्ष्य श्रम कर रहे हैं। इस निर्माण-प्रक्रिया से साधु-साध्वियां ही नहीं, अनेक श्रावक-श्राविकाएं भी लाभान्वित हो रहे हैं।

गुरुदेव व्यक्ति-निर्माण-कला के मर्मज्ञ थे। सोलह वर्ष की अवस्था में उनको पूज्य कालूगणी ने बाल साधुओं के अध्यापन का काम सौंपा। केवल पुस्तकीय ज्ञान देने को वे अधूरा अध्यापन समझते थे। उन्होंने अपनी छोटी उम्र की परवाह न करते हुए पूज्य कालूगणी से निवेदन किया कि केवल पाठ याद कराने व सुनने मात्र से इनका निर्माण नहीं हो पाएगा। कालूगणी स्वयं इस बात को जानते थे। उन्होंने जिस-जिस बाल मुनि को पढ़ाने का निर्देश मुनि तुलसी को दिया, उसकी संपूर्ण देखरेख की जिम्मेदारी उन्हीं के सुपुर्द कर दीं। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ मुनियों का सर्वांगीण निर्माण होने लगा।

साध्वी-समाज के निर्माण का जहां तक सवाल है, अतीत में इस दृष्टि से कोई सघन प्रयास हुआ या नहीं? इतिहास मौन है। गुरुदेव का ध्यान इस

ओर केंद्रित हुआ। उनके बहुआयामी प्रयासों से प्रतिभाओं को प्रोत्साहन मिला। आज तेरापंथ के साध्वी-समाज ने जैन समाज में अपनी जो पहचान बनाई है, उसमें गुरुदेव के कर्तृत्व का ही प्रतिबिंब है।

तेरापंथ समाज की संस्थाओं में कार्यकर्ताओं की शक्ति बेमिसाल है। गुरुदेव ने एक-एक कार्यकर्ता को कैसे खोजा, कैसे उसका आत्मविश्वास जगाया, कैसे उसे कार्य में नियोजित किया और कैसे उसके डिगते हुए विश्वास को थामकर उसे मजबूती दी, सबकी अपनी-अपनी दिलचस्प कहानियां हैं। गुरुदेव के युग में उभरे हर कार्यकर्ता को यही एहसास हुआ कि जब-कभी उसकी आंखों के सामने अंधेरा छाया, गुरुदेव स्वयं आलोकपुंज बनकर उसके पथ में खड़े हो गए। वह आत्मीय संबोधन! वह दिशादर्शन! वह शक्तिसंप्रेषण! और वह आलंबन! याद करते ही पूरे शरीर में रोमांच हो जाता है। विलक्षण थी उस महान गुरु की व्यक्तित्व-निर्माण-क्षमता।

महिमामय गुरु की अद्‌भुत छवि

किस प्रवाह में बह गई मेरी लेखनी? मैं अपने महान गुरुदेव की संपूर्ण कृति हूं। उन्होंने मुझे अ से ज्ञ तक सब-कुछ सिखाना चाहा, पर मेरी अपनी क्षमताएं सीमित रहीं। मैं उतना सीख नहीं सकी। जिस रूप में ढालना चाहा, ढल नहीं सकी। जो-जो कार्य कराने चाहे, कर नहीं सकी। हालांकि मैं जो भी काम करती, उनके आदेश/निर्देश से ही करती थी, फिर भी वे सब कार्य संपादित नहीं कर पाई, जिनके लिए उनकी प्रेरणा मिली थी। अर्हता की कमी, समझ की कमी, अनुभव की कमी, समय की कमी आदि कारणों से मैं गुरुदेव से वह सब-कुछ नहीं ले पाई। फिर भी मैं जो कुछ हूं, अपने गुरुदेव के कर्तृत्व की मिसाल हूं।

मुझे नाज है कि मुझे ऐसे गुरु मिले, जिनका वरदायी साया मेरी जीवन-यात्रा और विकास-यात्रा का आधार बना। जिनकी कृपा से मुझे अंधेरे से प्रकाश में आने का अवसर मिला। जिनकी सन्निधि में मुझे अपरिमित आत्मतोष उपलब्ध हुआ। जिनके अनंत वात्सल्य ने मुझे कभी किसी प्रकार की रिक्तता का अनुभव नहीं होने दिया। जिन्होंने आदि से अंत तक मुझे दिया ही दिया, उस अलौकिक और महिमामय गुरु को शब्दों में बांधने

का साहस ही नहीं है। वे अनुपमेय थे, वे अपरिमेय थे। आयारो आगम में आत्मा के स्वरूप की व्याख्या नेति-नेति के रूप में करते हुए कहा गया है–**उवमा ण विज्जए, अरूवी सत्ता**।

गुरुदेव ने उक्त वाक्यांश का विश्लेषण करते हुए आयारो की **अर्हत्-वाणी** में लिखा है–

उपमातीत अरूपी सत्ता
वह केवल ज्ञाता द्रष्टा है
निज पर्यायों का स्रष्टा है
वह आत्मा है, परमात्मा है
सर्वात्मा है, सर्वज्ञानी
आयारो की अर्हत्-वाणी।

गुरुदेव आज किसी रूप में हों, पर मुझे तो आत्मा के बारे में उनके द्वारा प्रस्तुत उस स्वरूप में ही गुरुदेव की छवि दिखाई देती है, **किं बहुना**।

20. एक असाधारण आचार्य

राजस्थान का छोटा-सा कस्बा गंगापुर। साधारण कस्बा, साधारण लोग और साधारण घटनाएं। लोगों के मन में न बड़ी आकांक्षाएं, न बड़े सपने और न बड़ी भागदौड़। सादी वेशभूषा, सादा खानपान, सादी जिंदगी और सादगी से भरा माहौल। उस साधारण और सादे परिवेश में एक असाधारण घटना घटी। वह प्रसंग था 26 अगस्त 1936 का। उस दिन तेरापंथ के आसमान पर सतरंगे इंद्रधनुष खिले, धरती में विलक्षण स्पंदन हुए और हवाओं में अजीब-सी मस्ती परिलक्षित हुई। वहां के 'रंग भवन' में उत्सवी माहौल था, जो उठते हुए सूरज के साथ ज्ञानजी के चौक में उतरने लगा। हजारों लोगों की उपस्थिति में बाईस वर्षीय मुनि तुलसी का पदारोहण समारोह आयोजित हुआ। एक नए इतिहास की सिद्धश्री लिखी गई। आस्था के उफनते हुए सागर ने नवोदित नौवें आचार्य के चरण पखारे।

शारीरिक सौंदर्य

ज्ञानजी के चौक में जो घटना घटी, उसके पंख उग आए। पूरे कस्बे में बात फैल गई। चर्चा का मुख्य विषय एक ही हो गया। इतना बड़ा संघ! और इतनी छोटी वय के आचार्य! सैकड़ों साधु-साध्वियों का नेतृत्व मतीरों का भारा बांधने जैसा काम। इतना नाजुक शरीर और नजाकत भरा दिल! अनुशासन की कड़ी कार्यवाही कैसे होगी? नन्हे-नन्हे कंधों पर धर्मसंघ का इतना बड़ा जुआ! मगन मुनि जैसे अनुभववृद्ध एवं वयोवृद्ध मुनियों के रहते एक युवा मुनि को आचार्य क्यों बनाया गया? जिज्ञासा, कौतूहल और आश्चर्य के साथ लोगों का हुजूम उमड़ पड़ा। 'रंग भवन' और उसके आसपास का स्थान जनाकीर्ण हो गया।

गौर वर्ण, उन्नत भाल, चमकीली आंखें और विलक्षण कान। श्वेत परिधान में सुशोभित पट्ट पर आसीन आचार्य तुलसी। लोग आए और निर्निमेष खड़े हो गए। पीछे आने वालों की आतुरता उन्हें वहां से हटने के लिए मजबूर करने लगी, अन्यथा चेहरे से आंखें हटती ही नहीं थीं। इस प्रसंग में आचार्य महाप्रज्ञ की कुछ पंक्तियां मुखर हो उठती हैं–

कानों की छटा निराली।
आंखें इमरत की प्याली।
किसने सौन्दर्य सजाया रे।
महाप्राण गुरुदेव।।

आचार्यश्री की अवस्था

जो नए आचार्य को देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाए, प्रायः वे सभी लोग आए। आचार्य तुलसी का तेज, ओज और प्रभाव देखकर वे अभिभूत हो गए। आचार्यश्री के निकट विनम्र मुद्रा में उपासनारत मुनिश्री मगनलालजी स्वामी को देखकर भी लोगों को आश्चर्य हुआ। अवस्था में इतना अंतर होने पर भी आचार्य के प्रति इतना विनय! इस प्रसंग को लेकर भी लोग आपस में बतियाने लगे।

आचार्य तुलसी की अवस्था को लेकर अनेक व्यक्ति चिंतन में उलझ गए। कुछ व्यक्ति सुनी-सुनाई बात का सत्यापन करने के लिए मुनिश्री मगनलालजी स्वामी के पास पहुंचे। अवसर देखकर उन्होंने पूछा–'आचार्यश्री की उम्र कितनी है? क्या वे मात्र बाईस वर्ष के हैं?' मुनिश्री मगनलालजी बोले–'अरे भाई! आपको किसने कहा कि आचार्यश्री बाईस वर्ष के हैं। हमारे आचार्यश्री तो बयासी वर्ष के हैं।' बयासी वर्ष की बात सुनकर कानों को विश्वास नहीं हुआ। जिज्ञासु लोग विस्फारित नयनों से देखने लगे। उनकी मौन जिज्ञासा को समाहित करते हुए मुनिश्री मगनलालजी बोले–'हमारे संघ की परंपरा के अनुसार पूर्ववर्ती आचार्य उत्तरवर्ती आचार्य को अपने उत्तराधिकार के साथ अपना सब कुछ सौंपकर जाते हैं। समूचा संघ, संघ के संरक्षण एवं संवर्धन का दायित्व, अपने अनुभवों का खजाना और भावी दिशादर्शन। इतना सब कुछ देते हैं तो अवस्था कहां छूटती है?

वे अपनी अवस्था भी देकर जाते हैं। पूज्य कालूगणी की अवस्था लगभग साठ वर्ष की और उनके उत्तराधिकारी की अवस्था बाईस वर्ष की। 60 में 22 जोड़ने से 82 हो जाते हैं। बोलो, हमारे आचार्यश्री की अवस्था बयासी वर्ष की है या नहीं?' मुनिश्री मगनलालजी अपनी बात ऐसी युक्ति से समझाते कि वह सब की समझ में आ जाती और प्रश्नकर्ता मौन हो जाते।

प्रशिक्षण की कला

आचार्यश्री तुलसी सहज साधक थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। ज्ञानाराधना उनकी रुचि का विषय था। उनका अध्यापन-कौशल विलक्षण था। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने पढ़ाना-सिखाना प्रारंभ किया। जीवन के आखिरी दिनों तक वे अध्यापन करते रहे। जब तक पाठ्य विषय विद्यार्थी के गले नहीं उतरता, उन्हें संतोष नहीं होता था।

एक बार कुछ विद्यार्थी साधु-साध्वियों को आचार्यश्री ने 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' नाम का दार्शनिक ग्रंथ पढ़ाना शुरू किया। तीन-चार दिनों से बराबर पाठ चल रहा था। पढ़ने वाले पंद्रह-बीस विद्यार्थी थे। आचार्यश्री पढ़ाते और विद्यार्थी सुनते। न कोई प्रश्न और न कोई चर्चा। आचार्यश्री को ऐसा अनुभव हुआ कि वे प्रवचन कर रहे हैं और श्रोता सुन रहे हैं। अध्यापन में आनंद नहीं आया। पांचवें दिन थोड़ा पढ़ाकर आचार्यश्री ने पूछा–'अस्ति किञ्चित् प्रष्टव्यम्?' विद्यार्थी मौन रहे। आचार्यश्री बोले– 'अध्ययन करते समय दो प्रकार के व्यक्ति मौन रहते हैं। प्रथम प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं, जो सब कुछ समझ लेते हैं। दूसरे प्रकार में ऐसे व्यक्तियों का समावेश होता है, जो कुछ भी नहीं समझ पाते। तुम चार दिनों से पाठ सुन रहे हो, भित्तिचित्र बनकर सुन रहे हो। जब तक शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच संवाद नहीं होगा, तत्त्व बुद्धिगम्य कैसे होगा? तुम्हें किस कोटि का विद्यार्थी माना जाए?'

आचार्यश्री ने इस तरीके से प्रतिबोध दिया कि विद्यार्थी साधु-साध्वियों की सुषुप्ति टूट गई। उसी दिन से उनकी जिज्ञासाओं के पंख खुल गए। आचार्यश्री के समाधान भी इतने सुंदर होते, जिससे दर्शन जैसा नीरस विषय सरस बन गया। यह तो आचार्यश्री के अध्यापन-कौशल का एक

निदर्शन है। उनके विद्यार्थियों के अनुभव संकलित किए जाएं तो ऐसे सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत हो सकते हैं।

प्रातिभ ज्ञान की स्फुरणा

पूज्य कालूगणी का अंतिम चातुर्मास गंगापुर था। चातुर्मास के दो मास पूरे होने से पहले ही उनका महाप्रयाण हो गया। उस वर्ष भाद्रपद मास दो थे। शेष तीन महीने और कुछ दिनों का समय आचार्य तुलसी ने गंगापुर में बिताया। वहां से विहार के पूर्व ही आगामी मर्यादा-महोत्सव के लिए प्रार्थनाएं आने लगीं। सबसे पहले जोधपुर की प्रार्थना हुई। मेवाड़, मारवाड़ और थली के अनेक क्षेत्रों की ओर से अनुरोध किया गया। ब्यावर के श्रावकों का अनुरोध सर्वाधिक प्रबल था। उन्होंने पूज्य कालूगणी के चरणों में उपस्थित होकर कई बार प्रार्थना की थी। उस समय उनकी प्रार्थना सफल नहीं हुई। गंगापुर में उन्होंने पुनः प्रार्थना का सिलसिला शुरू कर दिया।

ब्यावर में तेरापंथी परिवार कम थे। महोत्सव के अवसर पर तीन-चार सौ साधु-साध्वियों के संभागी बनने की संभावना थी। हजारों-हजारों यात्रियों की व्यवस्था का भी प्रश्न था। इस संदर्भ में ब्यावर के श्रावकों ने कहा–'इस बार वहां का वातावरण बहुत अच्छा है। स्थानकवासी समाज के पांच सौ परिवार तथा अन्य सभी लोग हमारे साथ हैं। उन्होंने हमें आश्वासन दिया है कि यहां मर्यादा महोत्सव होगा तो उनका पूरा सहयोग रहेगा।'

गंगापुर का चातुर्मास संपन्न होते ही ब्यावर के श्रावक पुनः प्रार्थना करने आए। मुनिश्री मगनलालजी स्वामी ने उनकी दलाली की। आचार्यश्री ने उनको सजग करते हुए कहा–'दूसरे संप्रदायों के लोग आपके साथ हैं, यह बहुत अच्छी बात है, पर भरोसा अपने हाथ-पैरों का करना चाहिए। दूसरों के भरोसे रहने से कभी-कभी धोखा भी हो सकता है।'

श्रावक समाज द्वारा पूरा विश्वास दिलाने पर भी आचार्यश्री ने उनके धैर्य और गांभीर्य को मापने के लिए एक बार फिर कसौटी पर चढ़ाते हुए कहा–'श्रावको! एक बार स्वयं को अच्छी तरह तोल लो। कहीं हमारा आयोजन मजाक न बन जाए।' श्रावक बोले–'गुरुदेव! हम स्वयं सजग

हैं, सक्षम हैं और सावधान हैं। आपके प्रताप से सारा काम ठीक होगा।' आचार्यश्री ने चिंतनपूर्वक ब्यावर में महोत्सव करने की घोषणा कर दी। श्रावक समाज का मनोरथ सफल हुआ।

तुलसी युग का प्रथम विरोध

ब्यावर का श्रावक समाज मर्यादा-महोत्सव की तैयारी में संलग्न हो गया। साधुओं, साध्वियों एवं यात्रियों के लिए आवास की व्यवस्था निर्धारित करके श्रावक लोग दर्शन करने आए। आचार्यश्री ने एक वाक्य कहा–'सब कुछ ठीक है, फिर भी सावधान रहना।' श्रावकों के मन में कोई संदेह नहीं था, पर आचार्यश्री को ऐसा आभास हो रहा था कि कहीं कोई अवरोध उपस्थित हो सकता है। इस आधार पर वे निश्चिंत नहीं थे।

गंगापुर से विहार कर आचार्यश्री छोटे-छोटे गांवों का स्पर्श करते हुए ब्यावर के निकट पहुंच गए। रास्ते में ब्यावर के श्रावकों ने कई बार दर्शन किए। उन्होंने वहां के वातावरण एवं व्यवस्था के संबंध में अनुकूल सूचनाएं दीं। आचार्यश्री ने उनसे कहा–'वातावरण अच्छा है, अच्छा ही रहना चाहिए, पर इस संबंध में लापरवाही न बरती जाए।' श्रावक लोग जागरूक थे, उन्हें यह कल्पना भी नहीं थी कि अप्रत्याशित रूप से वातावरण में कोई प्रतिकूल मोड़ आ सकता है।

आचार्यश्री ने ब्यावर में प्रवेश किया और वहां का वातावरण बदल गया। मर्यादा-महोत्सव को असफल बनाने की साजिश होने लगी। श्रावक लोग घबराए। वे आचार्यश्री के पास पहुंचे। वे बोले–'गुरुदेव! आपने हमको पहले ही सावधान किया था, पर हम समझ नहीं पाए। अब यहां विरोध की चिनगारी सुलग चुकी है। विरोधी लोगों के इरादे सही नहीं हैं। समय पर कुछ भी हो सकता है।'

आचार्यश्री के लिए यह सूचना अप्रत्याशित नहीं थी। फिर भी स्थिति चिंतनीय थी। उधर विरोधी पक्ष ने मीटिंग करके सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित कर लिया कि उसकी ओर से तेरापंथी समाज को किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया जाएगा। आधी रात के समय यह प्रस्ताव पारित हुआ। तेरापंथी समाज के प्रमुख श्रावकों को चिंता हुई कि स्थानकवासी श्रावक

लालचन्दजी सिंघावत (कोठारी) के मकान 'कुन्दन भवन' में साध्वियों को ठहराया गया है। उसे खाली कराया गया तो साध्वियां कहां रहेंगी?

मुनिश्री मगनलालजी ने श्रावकों की चिंता दूर करते हुए कहा–'आप चिंता न करें। हमारे लिए जो स्थान है, वह हम साध्वियों के लिए छोड़ देंगे और अपने लिए कोई दूसरा स्थान खोज लेंगे।' यद्यपि ऐसी स्थिति नहीं बनी। क्योंकि 'कुन्दन भवन' के मालिक लालचन्दजी ने अपने ही समाज के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और साध्वियों से स्थान खाली नहीं करवाया।

इधर तेरापंथ समाज की चार महिलाओं ने अपने आभूषणों की पेटियां प्रस्तुत करके श्रावकों का हौसला बुलंद कर दिया। उन्होंने दृढ़ता से कहा– 'हमारे ये गहने किस काम आएंगे? आप इन्हें ले जाओ और यात्रियों के लिए तीन-चार मकान खरीद लो।' यद्यपि मकान खरीदने की भी जरूरत नहीं पड़ी, पर महिलाओं के साहस और सूझ-बूझ ने उनका इतिहास तो बना ही दिया।

जैन संप्रदायों के द्वारा किए गए असहयोग एवं विरोध के बावजूद आचार्यश्री का प्रथम मर्यादा-महोत्सव कल्पनातीत रूप में सफल रहा। विरोधी लोगों का चिंतन था कि नए-नए आचार्य हैं और अवस्था में भी छोटे हैं। इतने बड़े विरोध के सामने वे घबरा जाएंगे और अपने पैर नहीं जमा पाएंगे, किंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। आचार्यश्री की पुण्यवत्ता, साहस एवं दूरदर्शिता, पूर्वाचार्यों की कृपा तथा श्रावक समाज के श्रद्धापूर्ण समर्पण से मर्यादा-महोत्सव सानंद संपन्न हुआ। एक बाईस वर्षीय आचार्य के अनुशासन-कौशल, तेरापंथ के संविधान, संगठन आदि का जनता पर अप्रतिम प्रभाव हुआ।

दूरदर्शितापूर्ण उपक्रम

प्रश्न होता है कि आचार्यश्री के व्यक्तित्व में ऐसा कौन-सा तत्त्व था, जिसके कारण उन्हें पूर्वाभास हुआ। उनके समग्र जीवन की गंभीरता से समीक्षा की जाए अथवा उनकी आत्मकथा–'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' का अध्ययन किया जाए तो ऐसे अनेक जीवंत प्रसंग उपलब्ध हो सकते हैं, जो

उनकी दूरदर्शिता, जागृत अन्तर्दृष्टि या प्रातिभज्ञान को उजागर करने वाले हैं। साध्वियों की शिक्षा, पारमार्थिक शिक्षण संस्था, समणश्रेणी आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं तो अणुव्रत, नया मोड़, प्रेक्षाध्यान, महिलाओं के लिए सोने की सीमा, ब्याज के धंधे पर अंगुलि-निर्देश आदि घटनाएं भी इसी तथ्य की परिक्रमा करती हैं। राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के समाधान में भी आचार्यश्री की महती भूमिका रही है। राजीव–लौंगोवाल समझौता, संसद के गत्यवरोध की समाप्ति, जनता से काला धन निकलवाने के लिए चलाए गए सरकारी अभियान में वित्तमंत्री श्री सी. सुब्रह्मण्यम् को दिया गया सुझाव आदि अनेक प्रसंग हैं, जो आचार्यश्री की अनिर्वचनीय सूझ-बूझ के साक्ष्य हैं।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व और कर्तृत्व अवाच्य है। बयासी वर्ष और लगभग आठ महीने की उनकी जीवनयात्रा में उन्होंने छह दशकों तक तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशास्ता या नियंता का दायित्व जिस दक्षता के साथ निभाया, वह इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज है। उन्होंने जो कुछ किया और जितना कुछ सहा, कोई साधारण व्यक्ति न तो कर सकता है और न ही सह सकता है। उस असाधारण महापुरुष के असाधारण कर्तृत्व को अंतहीन नमन।

बीसवीं सदी के शिखरपुरुषों में एक नाम है—आचार्य तुलसी। राजस्थान के नागौर जिले के एक साधारण कस्बे में जन्म लेने वाले वे महापुरुष प्रदेश और देश की सरहदों में रहते-रहते कब और कैसे युगपुरुष बन गए, यह प्रसंग अनिर्वचनीय है। मानव-मन के आर-पार देखने की कला में निष्णात होकर उन्होंने मानवीय समस्याओं का अध्ययन किया। अपने विलक्षण चिंतन से देदीप्यमान समाधान की दिशाएं खोलकर उन्होंने मानव जाति का जो उपकार किया है, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

परिशिष्ट

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा : जीवन-परिचय

बीसवीं सदी के प्रख्यात धर्मनायक, लाखों लोगों की आस्था के केन्द्र, गति, प्रकाश और ऊर्जा के पर्याय, महामानव आचार्यश्री तुलसी की एक विलक्षण कृति है–संघमहानिदेशिका महाश्रमणी असाधारण साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा। जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यों के निर्देशन में साध्वी-समाज का पांच दशकों तक कुशल नेतृत्व कर इन्होंने एक गौरवपूर्ण कीर्तिमान बनाया है। शुभ्रवसना, ज्योति-शक्तिस्वरूपा ये एक अप्रमत्त साधिका हैं जिनमें अध्यात्मनिष्ठा, गुरुनिष्ठा और संघनिष्ठा की त्रिवेणी प्रवाहित है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी का जन्म 22 जुलाई सन् 1941 को कोलकाता महानगर में हुआ। इनके पिता का नाम सूरजमलजी बैद एवं माता का नाम छोटी बाई था। बालिका कला बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि, विवेकशील एवं संकोची स्वभाव की थी। 15 वर्ष की आयु (सन् 1956) में उन्होंने पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रवेश किया। लगभग 4 वर्षों की प्रशिक्षण अवधि के दौरान कला ने विनम्र एवं मेधावी मुमुक्षु के रूप में अपना स्थान बनाया।

गुरु पूर्णिमा का पवित्र दिन (8 जुलाई, सन् 1960) उम्र के 19वें पायदान पर, तेरापंथ की उद्गम स्थली केलवा में नवमाधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी से चारित्र ग्रहण किया। गुरु की पवित्र सन्निधि में व्याकरण, कोश, तर्कशास्त्र, आगम, दर्शन आदि अनेक विद्या-शाखाओं का तलस्पर्शी अनुशीलन कर सप्तवर्षीय संघीय पाठ्यक्रम में विशेष योग्यता प्राप्त की। अध्ययन-अध्यापन और लेखन के साथ हजारों पद्य परिमाण कण्ठस्थ कर साध्वियों की अग्रिम पंक्ति में स्थान बना लिया।

12 जनवरी सन् 1972, गंगाशहर की गौरवशाली धरा पर आचार्यश्री तुलसी ने इन्हें साध्वीप्रमुखा पद पर नियुक्त किया। उस समय इनकी अवस्था मात्र 30 वर्ष थी। तब से लेकर अनवरत तेरापंथ की अष्टम साध्वीप्रमुखा के रूप में गुरुत्रयी (श्री तुलसी-महाप्रज्ञ-महाश्रमण) के पावन निर्देशन में ये विशाल साध्वी समुदाय का गरिमापूर्ण नेतृत्व कर रही हैं।

इनके बहुआयामी व्यक्तित्व, नेतृत्व और कर्तृत्व को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है–

प्रभावी प्रवक्ता

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी एक प्रभावशाली वक्ता हैं। इनका वक्तव्य एक-एक वाक्य को प्रेरणा-दीप बनाने वाला प्रतीत होता है। शब्दों का सहज प्रवाह, रोचक उदाहरण, संक्षिप्तता और नवीनता इनके वक्तृत्व की विरल विशेषताएं हैं। अनेकशः अनुभव होता है कि एक बार साध्वीप्रमुखाश्री का प्रवचन सुनने वाला व्यक्ति सदा के लिए इनके प्रभाव-क्षेत्र में आ जाता है। विशेष संघीय उपक्रम हो या सार्वजनिक कार्यक्रम, सभा-संस्था के अधिवेशन हों या दैनिक प्रवचन, गंभीर वक्तृत्व-शैली श्रोताओं के अन्तःकरण को परिवर्तन की दिशा में प्रस्थित कर देती है।

प्रबुद्ध साहित्यकार

साध्वीप्रमुखाश्रीजी साहित्य-क्षितिज पर एक प्रौढ़ लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्राञ्जल भाषा, प्रभावी लेखन शैली, कसे हुए वाक्य तथा तथ्य-कथ्य की पूर्ण अभिव्यक्ति देने वाला शब्द-शिल्पन इनकी सृजन चेतना के अपूर्व वैशिष्ट्य हैं। भाव, भाषा और शैली का यह अद्‌भुत सौष्ठव पाठक को अथ से इति तक बांधे रखता है। गद्य, पद्य, इतिहास, उपन्यास, यात्रावृत्त, जीवनवृत्त आदि विविध विधाओं में इनकी लेखनी निर्बाध रूप से प्रवाहित हुई है।

इस साहित्यिक प्रतिभा ने न केवल सामान्य पाठकों को बल्कि देश के प्रसिद्ध साहित्यकारों, मूर्धन्य लेखकों और विचारकों को भी प्रभावित किया है।

नैसर्गिक कवयित्री

साध्वीप्रमुखाश्रीजी को निसर्गतः काव्य प्रतिभा प्राप्त है। इनकी कविताओं में संवेदनशीलता, सौन्दर्य बोध, क्रान्ति की गूंज और भक्ति का प्रवाह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। 'सांसों का इकतारा' तथा 'धूप-छांव' दो प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं, जिनमें विविध विषयस्पर्शी 200 से अधिक कविताओं का समाहार है। इनके द्वारा रचित शताधिक गीतों में भक्ति-समर्पण के साथ-साथ युगीन समस्याओं का समाधान भी समाहित है। संस्कार-निर्माण एवं नारी सशक्तीकरण के सन्दर्भ में भी इन्होंने अन्तःस्पर्शी गीत रचे हैं।

'तुलसी-प्रबोध' एवं 'विकास की वर्णमाला' इनकी गागर में सागर तुल्य सरस गेय कृतियां हैं।

कुशल संपादिका

लेखिका और कवयित्री होने के साथ-साथ साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ख्यातिप्राप्त संपादिका भी हैं। आचार्यश्री तुलसी ने हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी भाषा में तत्त्वविद्या, दर्शन, योग, काव्य-साहित्य, जीवन-चरित्र, आध्यात्मिक-औपदेशिक गीतों से सम्बद्ध शताधिक ग्रन्थों की सर्जना की। उनमें अधिकांश ग्रन्थों का संपादन साध्वीप्रमुखाजी ने किया। तुलसी जन्म शताब्दी (सन् 2014) के अवसर पर तुलसी वाङ्मय को नए परिवेश में प्रस्तुत कर एक ऐतिहासिक कार्य किया। वाङ्मय में समाहित आचार्यश्री तुलसी की आत्मकथा 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' (25 खण्ड) को कालजयी ग्रन्थमाला माना जा सकता है। आगम सम्पादन कार्य में भी संपृक्त रहीं। विशालकाय भगवती सूत्र की जोड़ (7 खण्ड) का श्रमसाध्य सम्पादन इनकी स्थितप्रज्ञता का प्रतीक है।

व्यक्तित्व निर्मात्री

साध्वीप्रमुखाश्रीजी का आध्यात्मिक व्यक्तित्व चतुर्विध धर्मसंघ के अनेक व्यक्तियों को नई दृष्टि और नई दिशा देने वाला है। साध्वियों की प्रतिभा को निखारकर, युगानुरूप उन्हें आगे बढ़ाकर, संस्कारों की

सुरक्षा-संवर्धन कर ये अपना दायित्व निर्वहन कर रही हैं। संघीय धरातल पर साध्वी-समाज और महिला-समाज के अनेक सक्षम व्यक्तित्व इनके कर्तृत्व की फलश्रुति है। साध्वीप्रमुखाजी ने नारी की नैसर्गिक विशेषताओं, क्षमताओं और सेवाओं को उभारकर उसके व्यक्तित्व को अपरिमेय ऊँचाई प्रदान की है। अस्तित्व-बोध से लेकर दायित्व-बोध तक उसे प्रशिक्षित किया है। क्रान्त विचारों और सशक्त लेखनी द्वारा ये महिला समाज का आध्यात्मिक पथदर्शन कर रही हैं।

प्रशासन एवं प्रबन्धन-वेत्ता

साध्वीप्रमुखाजी का प्रशासन एवं प्रबंधन कौशल बेजोड़ है। इनकी मृदु अनुशासना साध्वियों के विकास का पथ प्रशस्त करती है। अयाचित कृपा, वत्सलता और आत्मीयतापूर्ण प्रेरणा इनकी प्रशासन शैली के आधारभूत अंग हैं। इसी प्रशासन-कौशल की बदौलत ये चतुर्विध धर्मसंघ की आस्था धाम बनी हुई हैं।

प्रशासनिक दक्षता के साथ-साथ इनकी प्रबन्धन पटुता भी विलक्षण है। समय-प्रबन्धन, कार्य-प्रबन्धन एवं व्यक्ति-प्रबन्धन में इनका वैशिष्ट्य विख्यात है। सद्यः स्फुरित मनीषा, स्फूर्ति और सुनियोजित कार्यशैली ने इनके जीवन में कामयाबियों के कीर्तिमान स्थापित किए हैं।

संघीय सम्मान

तेरापंथ के महान तेजस्वी गुरुत्रयी युग में अपनी विनम्र सेवाएं समर्पित कर साध्वीप्रमुखाजी कृतार्थता का अनुभव कर रही हैं। समय-समय पर युगद्रष्टा आचार्यों के मुख कमल से निःसृत उद्‌गार इनके वजनदार व्यक्तित्व और कर्तृत्व के प्रतीक हैं।

आचार्यश्री तुलसी ने अपनी इस अद्वितीय कृति को **महाश्रमणी** (9 सितम्बर सन् 1989) और **संघमहानिदेशिका** (8 नवम्बर सन् 1991) जैसे महनीय पदों से तथा वर्तमान अनुशास्ता ने **असाधारण साध्वीप्रमुखा** (1 अगस्त 2016) एवं 'अहिंसा यात्रा को विभूषित करने वाली विभूति' (6 दिसम्बर 2020) के रूप में प्रतिष्ठित किया।

साध्वीप्रमुखाजी द्वारा सम्पादित साहित्य

(तुलसी वाङ्मय)

आत्मकथा साहित्य

1. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
2. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
3. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
4. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
5. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
6. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
7. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
8. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
9. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
10. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
11. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
12. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
13. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
14. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
15. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
16. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
17. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
18. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
19. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
20. मेरा जीवन : मेरा दर्शन

21. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
22. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
23. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
24. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
25. मेरा जीवन : मेरा दर्शन

गद्य साहित्य

26. महावीर : जीवन और दर्शन
27. हे प्रभो! यह तेरापंथ
28. तेरापंथ का प्राणतत्त्व
29. क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु
30. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य
31. महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी
32. अध्यात्म : अन्तस का स्पर्श
33. निर्ग्रन्थ प्रवचन ही परम सत्य है
34. अर्हत ने कहा
35. जैन दर्शन : आत्म दर्शन
36. जैन तत्त्वविद्या
37. अहिंसा : अमृत का महासागर
38. धम्मं सरणं पवज्जामि
39. जैन जीवनशैली
40. निर्माण : नए मानव का
41. प्रेक्षाध्यान : अध्यात्म का सोपान
42. अणुव्रत : गति प्रगति
43. अणुव्रत के आलोक में
44. अणुव्रत : नैतिकता का शंखनाद
45. शिक्षा : रूपान्तरण की प्रक्रिया
46. सन्देश : देश के नाम

47. दोनों हाथ : एक साथ
48. कुहासे में उगता सूरज
49. सार्थकता संवाद की
50. मेरी अनुभूतियां : मेरी कृतियां
51. सीख सुमत
52. तुलसी साहित्य की बोधकथाएं

काव्य साहित्य

53. माणक-डालिम-चरित्र
54. कालूयशोविलास-1
55. कालूयशोविलास-2
56. मगन चरित्र
57. सेवाभावी मुनि चम्पक
58. लाडां-वदना-सुजस
59. भरत-मुक्ति
60. चन्दन की चुटकी भली
61. आत्मोदय की ओर
62. आत्मा के आसपास
63. श्रावक-संबोध
64. पण्णा समिक्खए
65. तेरापंथ-प्रबोध : सम्बोध
66. नन्दन निकुंज
67. सोमरस
68. सुधारस
69. तुलसी-पदावली

संस्कृत साहित्य

70. जैनसिद्धान्तदीपिका
71. भिक्षुन्यायकर्णिकामनोनुशासने

72. काव्यामृतम्
73. निबन्धनिकुरम्बम्

पत्र : सन्देश : संवाद साहित्य

74. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-1
75. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-2
76. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-3
77. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-1
78. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-2
79. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-3
80. सन्देश : राष्ट्र नेताओं के नाम
81. संवाद : शिखर पुरुषों के साथ
82. संवाद : प्रबुद्ध पुरुषों के साथ
83. तुलसी पद्य साहित्य : सन्दर्भ कोश – 1
84. तुलसी पद्य साहित्य : सन्दर्भ कोश – 2

जय साहित्य

85. भगवती जोड़ – 1
86. भगवती जोड़ – 2
87. भगवती जोड़ – 3
88. भगवती जोड़ – 4
89. भगवती जोड़ – 5
90. भगवती जोड़ – 6
91. भगवती जोड़ – 7
92. झीणी चर्चा (सानुवाद)
93. आराधना (सानुवाद)

साध्वीप्रमुखाजी द्वारा आलेखित साहित्य

यात्रा साहित्य

1. रण की गोद में
2. जा घर आए संत पाहुने
3. तीन समुद्रों के तट पर
4. नए प्रदेश : नए अनुभव
5. जोगी तो रमता भला
6. बहता पानी निरमला
7. पांव-पांव चलने वाला सूरज
8. पंजाब में अध्यात्म का उजाला
9. संत चरण गंगा की धारा
10. जब महक उठी मरुधर माटी
11. परस पांव मुसकाई घाटी
12. गांधी के गुजरात में
13. धर कूंचां : धर मजलां
14. अरावली के अंचल में
15. उत्सव : आधी शताब्दी का
16. अमृत घट छलके
17. भारत ज्योति बनाम आत्मज्योति
18. अमृत पुरुष : जन्मभूमि में
19. यमुना के तीर पर
20. परिक्रमा प्रकाश की

गद्य साहित्य

21. अकथ कथा गुरुदेव की
22. लिखन बैठि जाकी छवि
23. करत-करत अभ्यास
24. कदम-दर-कदम
25. आधी दुनिया
26. बदले युग की धारा
27. विकास पुरुष ऋषि हेम
28. स्मृति के दर्पण पर
29. गणं सरणं गच्छामि
30. आयरियं सरणं गच्छामि
31. धम्मो दीवो पइट्ठा
32. एस धम्मे धुवे
33. सोपान निर्माण के
34. सत्यं शिवं सुन्दरं
35. सफर सम्पादन का – 1
36. सफर सम्पादन का – 2
37. प्रेरणा का दरिया

काव्य साहित्य

38. सांसों का इकतारा
39. धूप-छांव
40. बिन बाती बिन तैल
41. तुलसी-प्रबोध
42. विकास की वर्णमाला

संस्मरण साहित्य

43. प्रेरणा : पल दो पल की – 1
44. प्रेरणा : पल दो पल की – 2
45. प्रेरणा : पल दो पल की – 3

46. प्रेरणा : पल दो पल की – 4
47. प्रेरणा : पल दो पल की – 5
48. प्रेरणा : पल दो पल की – 6

पत्र साहित्य

49. धरोहर अक्षरों की – 1
50. धरोहर अक्षरों की – 2
51. धरोहर अक्षरों की – 3